■ वर्ष 43, अंक 3, दिसंबर 2019 ■ मूल्य 20 रुपये

सामयिक वार्ता

गांधी का भारत और आज



दो कविताएं : राजेंद्र राजन

करामाती आईने

याद आती है छुटपन में देखी एक नुमाइश
बांसों, टिन की चादरों और तिरपालों के सहारे
खड़ी की गई तमाम दुकानों के किनारे था 'हंसीघर'
हर तरफ से बंद एक कनात के भीतर
रखे थे अजब-गजब आईने
एक में देखो तो फुटबॉल जैसा दिखता था अपना सिर
किसी में टांगें बहुत छोटी दिखती थीं
और धड़ खूब बड़ा-सा
जैसे एक छोटे-से पतले स्टूल पर
रखी हो एक बड़ी-सी आलमारी
किसी के सामने हाथ उठाओ
तो वह क्रेन की तरह दिखता था
किसी के सामने पैर बढ़ाओ
तो वह लंबे बांस जैसा दिखता था जैसे हमसे अलग हो।

हम हैरान हो जाते और हंसी से पागल
हम अपने अक्स देखते और एक दूसरे का मजाक बनाते
और खुद पर भी हंसते जाते।
अब तक हम यही जानते थे कि जो जैसा है
आईने उसी का अक्स दिखाते हैं
पहली बार जाना कि ऐसे भी आईने होते हैं
जिनमें सबकुछ उलटा-पुलटा नजर आए।

वैसी नुमाइशें अब नहीं दिखतीं
या हो सकता है सर्कस की तरह
उनके अवशेष अभी कहीं-कहीं बचे हों
लेकिन ऐसे करामाती आईने अब हर जगह मौजूद हैं
जिनमें एक मरियल कुपोषित बच्चा दिखता है
हंसता-खेलता मोटा-ताजा तंदुरुस्त
जिसकी पीठ पर नील के निशान हैं
उसके चेहरे से हंसी फूट रही है
जो गड्ढे में गिरा पड़ा है
वह सीढ़ियां चढ़ता हुआ दिखता है
जो सजायाफ्ता है
वह मजे से घूम-फिर रहा है
जिसके हाथ खून से रंगे हैं
वह एकदम बेदाग नजर आता है।

हंसीघर का मकसद उसके नाम से ही जाहिर था
लेकिन हर जगह मौजूद इन आईनों के पीछे
मकसद क्या है?

एक

एक लक्ष्य
एक उमंग

एक ध्वजा
एक रंग

एक दिशा
एक डगर

एक नदी
एक लहर

एक पर्वत
एक शिखर

एक शब्द
एक अर्थ

बाकी सब को
कहो व्यर्थ

एक दृष्टि
एक दृश्य

कैसा दिख रहा भविष्य?

इस अंक में



सामयिक वार्ता

दिसंबर 2019, वर्ष 43, अंक : 3

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

संपादक : अफलातून

संपादन सहयोग
प्रो. बलबीर जैन, अरविन्द मोहन, हरिमोहन, राजेन्द्र राजन, सत्येन्द्र रंजन, प्रियदर्शन, अरुण त्रिपाठी, प्रो. महेश विक्रम सिंह, लोलार्क द्विवेदी, संजय गौतम, चंचल मुखर्जी, कमल बनर्जी, संजय भारती

परामर्श मंडल
सच्चिदानंद सिन्हा, प्रो. स्वाति, प्रो. कश्मीर उप्पल, स्मिता
रूप सज्जा : राम सिंह
मुखपृष्ठ : रामकिंकर बैज के गांधी, शांतिनिकेतन

कार्यालय : 20ए, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091
ईमेल : varta3@gmail.com

सदस्यता शुल्क :

एक प्रति	:	20 रुपए
वार्षिक शुल्क	:	200 रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क	:	300 रुपए
छह साला शुल्क	:	1000 रुपए
आजीवन शुल्क	:	3000 रुपए

खाता नाम : सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा : सोनारपुरा, वाराणसी (उ.प्र.)
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या : 40170100005458
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहां दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं, S के बाद o (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
(इस खाते में पैसे जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना ई-मेल अथवा मोबाइल 08765811730/ 08004085923 पर दें।)

संपादकीय

हे राम!

जरा याद कीजिए कि आजाद भारत में इसके पहले कब किसी ने सोचा था कि लोकसभा में कोई निर्वाचित प्रतिनिधि महात्मा गांधी के हत्यारे को देशभक्त कहने की जुर्रत कर सकता है। भले फिलहाल माफी मांगनी पड़ी हो, लेकिन प्रज्ञा ठाकुर शायद ही यह मन से मानती होंगी कि उनकी जुबान पर ऐसी बात आ गई जो सपने में भी आनी चाहिए थी। वे इसके पहले भी सार्वजनिक तौर पर ऐसी ही बात कह चुकी हैं। यानी यह माफीनामा महज एक कूटनीति है। सवाल किसी एक प्रज्ञा ठाकुर का है भी नहीं। संसद के बाहर तो पिछले पांच-छह साल से न सिर्फ ऐसे बयानों की भरमार है बल्कि आगरा के पास इसी 30 जनवरी को बाकायदा गांधी हत्या का प्रहसन सरेआम किया गया। पुतले में गोली मारी गई और सांकेतिक खून भी निकला। इन घटनाओं पर सरकारों या पुलिस ने क्या वही रवैया अपनाया जो जेएनयू या प्रधानमंत्री की कथित अवमानना के मामले में फौरन एफआइआर जैसे कदम उठाए गए।

जाहिर है, यह उस राजनीति का सच है, जो अरसे से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा के भीतर जड़े जमाए हुए है। यह उसका सबसे कुत्सित रूप है। इसके दूसरे रूपों पर गौर करेंगे तो यह समूचे लोकतंत्र, संविधान और भारत विचार पर हमले के रूप में सामने प्रस्तुत होगा। केंद्र की एनडीए सरकार के ताजा फैसलों पर ही विचार कर लीजिए। जम्मू-कश्मीर की अस्मिता पर हमले के लिए जो तौर-तरीके अपनाए गए, उसकी कल्पना शायद ही किसी ने की होगी। गांधी तो 1947 के अगस्त के पहले हफ्ते में कश्मीर गए थे और वादा देकर आए थे कि अंतिम फैसला वही होगा, जो यहां के मुसलमान, हिन्दू, सिख सभी मिलकर तय करेंगे। इस मायने में कश्मीर की जनता को एक तरह से कैद करके उस राज्य के विशेषाधिकार हटाने और पूर्ण राज्य का दर्जा खत्म करने की केंद्र सरकार की मौजूदा पहल गांधी के विचारों की हत्या जैसी ही है।

इसमें दो राय नहीं कि कांग्रेसी सरकारों ने भी पिछले 70 साल में कश्मीर के विशेषाधिकार को इस कदर लचीला बना दिया था कि वह कश्मीरियों की अस्मिता का एक प्रतीक भर रह गया था। कोई कह सकता है कि भाजपा के घोषणा पत्र में तो इधर कुछ समय से फिर अनुच्छेद 370 को हटाने की बात लिखी जाने लगी थी। लेकिन यह किसे पता था कि मौजूदा विपक्ष के ज्यादातर दल खुलकर इसका विरोध नहीं करेंगे। तो, क्या यह माना जाए कि खासकर 90 के दशक में उदारीकरण के बाद के वर्षों में ऐसा कुछ हुआ है कि आजादी के संकल्प और लोकतंत्र तथा संविधान की मर्यादाओं के प्रति विश्वास कमजोर हो गया है? अगर ऐसा नहीं है तो सुप्रीम कोर्ट भी क्यों कश्मीर के मामले की सुनवाई करने में सुस्ती दिखा रहा है, जबकि 2018 में उसकी एक पीठ ने यह फैसला सुनाया था कि अनुच्छेद 370 को अस्थायी नहीं माना जा सकता। यानी उसे हटाना संविधान की बुनियादी मान्यताओं से छेड़छाड़ करना होगा।

अब जरा लोकतंत्र के खेल पर नजर डालिए। चुनाव में बिना बहुमत पाए सरकार बनाने की भाजपा की रणनीति के अनेक उदाहरण देखे गए हैं। लेकिन हाल में महाराष्ट्र में जो दिखा, वह तो अनोखा ही है। जिस दिन शाम को शरद पवार ने ऐलान किया कि उद्धव ठाकरे के नेतृत्व में शिवसेना-राकांपा-कांग्रेस के महा विकास अघाड़ी की सरकार अपना दावा पेश करेगी, उसी दिन आधी रात को अचानक मुंबई के राजभवन से लेकर दिल्ली के प्रधानमंत्री कार्यालय और राष्ट्रपति भवन तक में हलचल मचती है। राज्यपाल के सामने भाजपा के देवेंद्र फड़नवीस और राकांपा के अजित पवार सरकार बनाने का दावा पेश करते हैं। रातोरात राज्यपाल राष्ट्रपति शासन खत्म करने की सिफारिश भेजते हैं। प्रधानमंत्री अपने विशेषाधिकार से बिना कैबिनेट बैठक बुलाए राष्ट्रपति को संस्तुति भेजते हैं और राष्ट्रपति की मुहर लग जाती है। सुबह आठ बजे शपथ ग्रहण भी हो जाता है। सुप्रीम कोर्ट भी तीन दिन बाद विधानसभा में शक्ति परीक्षण का आदेश देता है। अंततः देवेंद्र फड़नवीस की दूसरी पारी 80 घंटे में खत्म हो जाती है। गनीमत यह है कि शिवसेना-राकांपा और कांग्रेस मजबूती से डटी रहकर सरकार बना लेते हैं।

भाजपा के नेताओं का मानना है कि अगर अपने राष्ट्रवादी एजेंडे को आगे ले जाना है तो येन-केन प्रकारेण सत्ता पर काबिज होना जरूरी है। लेकिन सवाल है कि क्या विपक्ष भी उतना ही चौकस है? क्या विपक्ष की अब तक की राजनीति ने भाजपा को यह शह मुहैया नहीं करा दी है? क्या यह सही नहीं है कि लोकतांत्रिक और संवैधानिक मर्यादाओं की धज्जियां उन दलों ने कम नहीं उड़ाई हैं, जो आज शिकायत कर रहे हैं? क्या यह सही नहीं है कि नब्बे के दशक के बाद सभी दलों के एजेंडे पर तथाकथित ऐसे विकास की बात आ गई थी, जिसमें देश के आम लोगों के अधिकार निरंतर सिकुड़ते जा रहे थे? उन्हें महज वोट का औजार मान लिया गया था। विकास तो उद्योग घरानों का मुनाफा बढ़ना ही माना जाने लगा था। तो, क्या यह उसी की परिणति नहीं है?

असम में राष्ट्रीय नागरिक पंजी अव्यावहारिक, अमानवीय

समय के साथ कुछ बातें, सिद्धांत और जन सरोकार अप्रासंगिक हो जाया करते हैं और कुछ नए विचार, नई स्थापनाएं आकार लेती रहती हैं। पुरानी बातें जो कभी ज्वलंत होती हैं, वह या तो उल्टी पड़ जाती हैं या अपना प्रभाव खो देती हैं। यह नियम सार्वभौमिक और सार्वकालिक होता है। यानी समय कई समस्याओं का अपने आप समाधान करता रहता है। समझदार-सुजान व्यक्ति और संस्थाएं उस पर गहन मनन कर उसके अनुरूप अपना विचार बनाते हैं, बने हुए विचार को संवर्द्धित-परिवर्तित करते हैं और नासमझ लोग वही लकीर को पीटते अपना और मानवता का अनहित कर बैठते हैं। असम में वर्तमान में जारी राष्ट्रीय नागरिक पंजी एक ऐसी ही बला है, जो रूढ़ियों को ढोती हुई पूरे देश को परेशान करने वाली है।

यह सच है कि सत्तर के दशक में घुसपैठ असम की अस्मिता पर सबसे बड़ा संकट था और इसी चिंता में असम आंदोलन पूरे चरम पर था। यह घुसपैठ बांग्लादेश से आने वाली बांग्लाभाषी आबादी की ओर से हो रही थी और असमी मूल के लोगों को यह भय सताने लगा था कि यह बांग्ला आबादी कहीं उसे अल्पसंख्यक न बना दे। पड़ोस के त्रिपुरा का उदाहरण उनके सामने था। यह चिंता इतनी गहरी और लाजिमी थी कि समता संगठन जैसे समूहों ने भी इस आंदोलन का सक्रिय समर्थन किया। लेकिन कालांतर में यह समस्या विद्रुप रूप लेती गई।

सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर केंद्र की भाजपा-नीत एनडीए सरकार ने असम में राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनसीआर) तैयार करने का फैसला किया। इसका दो बार प्रकाशन भी किया जा चुका है। पहली बार में वैध दस्तावेजों के अभाव में या दस्तावेजों में कुछ कमी के कारण लगभग 40 लाख नागरिकों को इस पंजी से बाहर कर दिया गया था। दूसरी बार इसमें सुधार का मौका दिया गया और इस बार प्रकाशित पंजिका में यह संख्या घटकर 19 लाख रह गई है। यानी, असम में 19 लाख की आबादी भारत की नागरिक नहीं रह गई है। यह उस असम का हाल है, जहां की आबादी 4 करोड़ है। अगर पूरे देश में एनआरसी पर अमल किया जाए, तो यह संख्या कई करोड़ में हो जाएगी।

संख्या कई करोड़ हो जाने का यह मतलब नहीं है कि इस दायरे में आए सभी लोग इस देश में घुसपैठिया हैं बल्कि इसमें भारी संख्या उनकी होगी, जिनके पास कोई दस्तावेज नहीं है या गरीबी, अशिक्षा और रिहाइश की समुचित व्यवस्था के बगैर उनके दस्तावेज सही-सलामत नहीं रह गए हैं या खो गए हैं। वहां से आ रही खबरें यहां तक बताती हैं कि एक ही परिवार के कुछ सदस्य एनआरसी में हैं और कुछ नहीं हैं। पूर्व राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के कई परिजन इस पंजी से बाहर हो गए हैं। यहां ध्यान में रखने की बात है कि असम में जो 19 लाख लोग अनागरिक की श्रेणी में आ गए हैं, उनमें अधिकांश आदिवासी समुदाय के हैं, जिनके पास एक अदद समुचित घर और माल असबाब रखने की कोई व्यवस्था न होने से न तो कोई दस्तावेज है और कहीं से मिला भी है तो अब लापता हो चुका है। देशभर में करीब 10 करोड़ घुमंतू, अर्द्धघुमंतू और विमुक्त जनजातियों के अलावा बड़ी संख्या में ग्रामीण आबादी के इस दायरे में आने की पूरी आशंका है।

दूसरी समस्या है कि 1971 को सीमा रेखा बनाने पर जो असल के घुसपैठिए रेखांकित होंगे, वे मूल घुसपैठियों के दूसरी या तीसरी पीढ़ी के लोग होंगे, जिनका जन्म भारत में ही हुआ होगा और संविधान के अनुसार वे भारत के नागरिक हैं। दो-तीन पीढ़ी गुजर जाने के बाद उनका मूल खोजने का कोई मतलब नहीं है।

असली समस्या केंद्र और राज्य में सरकार का नेतृत्व कर रही पार्टी भाजपा की है। वह बार-बार अपना स्टैंड बदलती दिखती है। पहले घुसपैठियों के खिलाफ, फिर हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख घुसपैठियों को संरक्षण की घोषणा के बाद लगता है अब वह इससे चुपचाप ही बच निकलने की जुगत में है। लेकिन मुसलमानों को चिढ़ाने के साथ। असल में असम और बंगाल में इस एनआरसी से बहुत सारे हिंदू, जिनमें पिछड़े, दलित, गोरखा आदि बाहर हो रहे हैं। ऐसे में यह उसकी खुद की गले की फांस बनती नजर आ रही है। कामना करनी चाहिए कि सरकार को सद्बुद्धि आए और इसे ठंडे बस्ते में डाल दे। वरना उसकी इस मूर्खता और सांप्रदायिकता को लक्ष्य कर चलाए अभियान से असम के साथ ही पश्चिम बंगाल के करोड़ों के साथ ही देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में जाकर बसे करोड़ों लोग बड़ी मुसीबत में फंसने वाले हैं।

रोजगार और बराबरी के बिना आर्थिक संवृद्धि अर्धसत्य

पिछली तिमाही में संवृद्धि दर में गिरावट के मामले में सरकार और मुख्यधारा के सभी दल बहुत संजीदा है और सरकार ने आनन-फानन ही राहत पैकेज की घोषणा कर दी है। कॉरपोरेट टैक्स को 40 फीसदी से घटाकर 25 फीसदी कर दिया है। नए उद्यमों को इस पर भी 15 फीसदी की रियायत दी गई है। दूसरे शब्दों में, तर्क यह है कि संवृद्धि में तेजी लाने के लिए अमीर को और ज्यादा अमीर बनाना आवश्यक है। पर, क्या इन कदमों से सचमुच संवृद्धि की दर बढ़ेगी? ऐसा शायद नहीं होगा तभी तो इन करों के घटाने से राजस्व में कमी के साथ सरकारी व्यय में कटौती नहीं, बल्कि वृद्धि की बात कही गई है।

कारपोरेट टैक्स में कटौती का एक लक्ष्य विदेशी पूंजी को आकर्षित करना है। आर्थिक संवृद्धि में मंद रफ्तार का कारण भारत में विदेशी निवेश का कम होना माना जा रहा है। इस कारण दूसरे देशों के मुकाबले कारपोरेट टैक्स को कम किया गया है।

माना कि हम विदेशी पूंजी को आकर्षित करने में कामयाब हो जाते हैं और विनियोग में वृद्धि से उत्पादन क्षमता भी बढ़ जाती है तो उत्पादन में जो वृद्धि होगी, उसकी खपत कहां होगी? किन्हीं उद्योगों में खासकर कार उद्योग में उत्पादित वस्तुओं की मांग और खपत में गिरावट से इन उद्योगों में अनबिके सामान की बहुतायत की समस्या पैदा हो गई है। इस कारण इन उद्योगों में उत्पादन घट रहा है, जिससे बेरोजगारी में इजाफा हो रहा है। मसलन, मारुति उद्योग में अस्थायी श्रमिकों को काम मिलना बंद हो गया है और स्थायी श्रमिकों की भी छंटनी की आशंका है।

मंद रफ्तार की समस्या किन्हीं खास तरह के उद्योगों तक ही सीमित है। इनमें कार, एयरकंडीशनर जैसे उद्योग शामिल हैं। ये आम इस्तेमाल की वस्तुएं नहीं है। इनकी मांग और खपत ऊपरी आय वाले 10-15 फीसदी लोगों तक ही सीमित है। पिछले पच्चीस वर्षों में उत्पादन क्षमता बढ़ाने के मामले में ये उद्योग अग्रणी रहे हैं और आर्थिक संवृद्धि में इनका प्रमुख योगदान रहा है। इन वस्तुओं के उपभोक्ता वर्ग में शामिल होने के लिए न्यूनतम आय का स्तर देश की मौजूदा औसत आय से दोगुना से भी ज्यादा है। कार और एयरकंडीशनर टिकाऊ वस्तुएं हैं और इनको 8-10 साल में एक बार ही खरीदा जाता है। पिछले पच्चीस वर्षों में इनकी मांग में काफी तेजी रही है और अब इसमें ठहराव आ गया है क्योंकि ज्यादातर संभावित उपभोक्ता इन्हें खरीद चुके हैं और इन वस्तुओं के नए उपभोक्ताओं की संख्या ज्यादा नहीं है।

मांग और खपत बढ़ाने से ही उत्पादन बढ़ता है। पिछले तीस वर्षों में प्रति व्यक्ति आय दोगुना से ज्यादा हो गई है पर इसका फायदा ऊपरी तीस फीसदी आबादी तक ही पहुंचा है। अब मांग के अभाव की समस्या पैदा हो गई है, जिसका समाधान निचले सत्तर फीसदी आबादी की आय के बढ़ने से जुड़ा है। पर इसके लिए उन्हें रोजगार और आय-सर्जन के साधन उपलब्ध कराना आवश्यक है। अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक बदलाव की जरूरत है। आम इस्तेमाल वस्तुओं की उत्पादन क्षमता बढ़ाने की जरूरत है। उच्च वर्गों को रियायतें देने से मंदी नहीं दूर होगी। जरूरत मांग के सर्जन की है। इसके लिए आय उन तबकों की बढ़ानी होगी जो इसका ज्यादा हिस्सा उपभोग पर करते हैं। उच्च वर्गों की आय में पिछले तीस वर्षों में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है और उसके साथ ही अनबिके मकानों, फ्लैटों की तादाद भी बढ़ी है। वे अपनी बचत का बड़ा हिस्सा इसी में लगाते हैं। इस तरह वे जमीन-जायदाद के दामों में बनावटी वृद्धि लाते हैं। वे वास्तविक खरीदारों से जबरदस्त मुनाफा ऐंठते हैं। मंदी की समस्या आय की गैर-बराबरी से जुड़ी है। उन तबकों की क्रय शक्ति बढ़नी चाहिए, जिनकी बुनियादी जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही है। उनके रोजगार और आय सर्जन के लिए सरकारी संसाधनों का इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह मांग के सर्जन से मंदी की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

कारपोरेट टैक्स में रियायत से मंदी की समस्या का हल नहीं होगा, उससे अमीरों की आय ही बढ़ेगी। समस्या का हल रोजगार सर्जन से निकल सकता है। रियायतों से सरकारी राजस्व घटाने की जगह उन संसाधनों को रोजगार सर्जन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। वैसे भी संवृद्धि का एक प्रमुख उद्देश्य निचले तबकों का उत्थान करना है। प्रगति का मापदंड मात्र संवृद्धि दर नहीं है, असली सवाल तो रोजगार सर्जन और बराबरी (समता) का है।

अयोध्या पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला तर्कसंगत नहीं, विवादों भरा

राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मामले में लंबे समय की मुकदमेबाजी के बाद आखिर सर्वोच्च न्यायालय का फैसला आया है। इससे पहले इस पर इलाहाबाद हाइकोर्ट की लखनऊ पीठ का फैसला 2010 में आया, जिसमें विवादित भूमि को तीन हिस्सों में बांटकर मुकदमा लड़ रहे तीन पक्षों- निर्मोही अखाड़ा, रामलला विराजमान और सुन्नी वक्फ बोर्ड को बांटा गया था। तीनों पक्ष इससे असहमत होकर सुप्रीम कोर्ट आए थे। इसका अलग से आपराधिक मुकदमा चल रहा है। इस पर अभी निचली अदालत का फैसला आना बाकी है। 1992 में संघ परिवार ने बाबरी मस्जिद ढहा दी थी।

बतौर, सुप्रीम कोर्ट कोई पक्ष अपना दावा साबित नहीं कर पाया। यह भी साबित नहीं हो पाया कि बाबरी मस्जिद का निर्माण किसी मंदिर या राम मंदिर को तोड़कर हुआ था। ऐसे में 6 दिसंबर 1992 में मस्जिद के विध्वंस का अपराध और संगीन हो जाता है। लेकिन इसमें हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बाबरी मस्जिद की नींव इससे पहले 1949 से ही कमजोर होना शुरू हो गई थी, जब उसमें रामलला की प्रतिमा चोरी-चुपके रखी गई और तत्कालीन सरकार ने उसे तत्काल हटाने की कोई कार्रवाई नहीं की। नींव 1986 में उस समय और कमजोर हो गई जब तत्कालीन प्रधानमंत्री ने केस निर्णित होने से पहले ही ताला खुलवाया।

सुप्रीम कोर्ट ने हिन्दुत्ववादियों द्वारा बाबरी मस्जिद ध्वंस को गैरकानूनी ठहराया है लेकिन ऐसा लगता है कि उसका फैसला इस कृत्य को वैधता प्रदान करता है। सुप्रीम कोर्ट ने संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत मिली शक्तियों का उपयोग करते हुए

2.77 एकड़ विवादित भूमि एक पक्ष को देकर केंद्र और राज्य सरकार को वहां मंदिर निर्माण के लिए ट्रस्ट बनाने का निर्देश दिया है। इसी के साथ अयोध्या के प्रमुख स्थान पर मस्जिद बनाने के लिए मुस्लिम पक्ष को पांच एकड़ जमीन देने का आदेश भी दिया गया। यह फैसला विवाद को समाप्त करने के लिए वस्तुस्थिति से अलग हटकर पंचायती करने जैसा है। लेकिन अदालत का यह आदेश देश के न्याय पसंद लोगों को संतुष्ट करने में असफल रहा है। इस तरह की पंचायती तब तक तो ठीक कही जाती जब तक मस्जिद नहीं ढहाई गई थी। लेकिन मस्जिद ध्वंस के बाद विध्वंसकारियों के पक्ष में इस तरह की पंचायत में बहुसंख्यकवाद की ओर झुकाव दिख रहा है जो देश के लिए शुभ संकेत नहीं है।

इस फैसले के बाद से कुछ लोग बार-बार यह कह रहे हैं कि अयोध्या पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला सबको चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए। उसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए। इस समय ऐसा कहने वालों में उनकी संख्या ज्यादा है जो कुछ समय पहले तक यह कहते थे कि मंदिर के पक्ष में फैसला नहीं आया तो कानून बनाकर उसे बदला जाएगा। ऐसा कहते हुए वे शाहबानो प्रकरण का उदाहरण देते थे। बताते थे कि सुप्रीम कोर्ट का फैसला बदला जा सकता है।

दरअसल यहां मसला स्वीकार-अस्वीकार का नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के अनेक असंगत फैसले भी इस देश ने स्वीकार ही किए हैं। सुप्रीम कोर्ट ने अतीत में कई असंगत फैसले दिए हैं। अपने ही बनाए नियम उसने तोड़े हैं। नर्मदा बांध मामले में पर्यावरण को ताक पर रख कर सुप्रीम कोर्ट ने विकास की एक बेतुकी परियोजना के पक्ष में फैसला दिया। हजारों लोग बेघर हुए। लेकिन एक दूसरे मामले में उसी पर्यावरण की दुहाई देकर सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली से सैकड़ों फैक्ट्रियों को बाहर कर दिया। फिर हजारों लोग बेरोजगार हुए, वह फैसला भी स्वीकार किया गया।

देश ने सुप्रीम कोर्ट के सभी फैसले इसलिए स्वीकार किए क्योंकि उन्हें अस्वीकार करने से व्यवस्था टूट जाएगी, अराजकता फैलेगी और देश संकट में होगा। लेकिन स्वीकार करने का यह मतलब नहीं है कि उसकी विवेचना न की जाए। फैसले की विवेचना होनी चाहिए. उसके असर का मूल्यांकन होना चाहिए। सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं पर चर्चा होनी चाहिए। इससे भविष्य में न्यायिक प्रक्रिया मजबूत होती है। समाज में न्यायिक चेतना विकसित होती है। न्याय और अन्याय का भेद पता चलता है। न्याय और अन्याय के बीच समझौते का भी एक विकल्प होता है, जहां दोनों ही पक्ष थोड़ा हारते हैं, थोड़ा जीतते हैं।

फैसले पर गौर करने से साफ है कि अदालत ने बीच का रास्ता निकालने की कोशिश की है ताकि टकराव टाला जा सके। इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने सर्वधर्म समभाव वाला बेंच तैयार किया था, और उस बेंच ने सुलह का फॉर्मूला आम सहमति से निकालने की कोशिश की। लेकिन फैसले से एक पक्ष में पाने का और दूसरे पक्ष में खोने का अहसास पैदा हो गया है।

मौजूदा सरकार को भी देश के भविष्य से कोई मतलब नहीं है। तात्कालिक फायदे के लिए सरकार भविष्य से खिलवाड़ करने पर उतारू है। फैसला तो यह होना चाहिए था कि कोर्ट मस्जिद की ही तरह मंदिर के लिए भी कहीं और जगह जमीन उपलब्ध कराती और जमीन अपने कब्जे में रखती। दुनिया में इस तरह के उदाहरण मौजूद भी है। तुर्की की सोफिया मस्जिद इसका सटीक प्रमाण है। हजार साल की इस मस्जिद को अतातुर्क कमाल पाशा ने बैजेंटाइन काल का संग्रहालय बना दिया था।

इस समय सवाल देश की लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, सह अस्तित्व की परंपरा को बनाए रखने और बचाने का है। इस फैसले को इस उम्मीद, सतर्कता और जिम्मेदारी के साथ स्वीकार किया जा सकता है कि इस तरह के असंख्य विवादों पर आगे पूर्ण विराम लग जाए। देश की करीब तीन हजार साल की ज्ञात इतिहास में अनेक ऐसी घटनाएं हैं, जिनमें जैन, बौद्ध और वैदिक परंपरा के पूजास्थलों, पूजनीय प्रतिमाओं का ध्वंस, उनका दूसरे मतावलंबियों द्वारा हरण किया गया है।

अब व्यवस्था होनी चाहिए कि आगे ये मुद्दे विवाद का कारण न बन पाएं। सरकार, संविधान, न्यायपालिका और वृहत्तर तौर पर समाज को यह मन से स्वीकार करना चाहिए कि संसद द्वारा 1991 में पारित 'उपासना स्थल कानून' का पालन किया जाएगा, जिसमें धर्मस्थलों की 15 अगस्त 1947 की स्थिति मानी गई है। देश की धर्मनिरपेक्ष राजनीति की कमजोरियों को उजागर करने की जरूरत है। इसकी नए सिरे से व्याख्या की जरूरत है। 'अभी तो केवल झांकी है, काशी, मथुरा बाकी है', 'तीन नहीं, अब तीस हजार, बचे न एको कब्र, मजार' जैसी मानसिकता और विचारधाराओं से निरंतर संघर्ष जारी रखने की जरूरत है।

राफेल सौदे के गड़बड़झाले पर अब तो जांच जरूरी

राफेल सौदे पर सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले से यह साफ हो गया है कि अदालत इसकी जांच में जाना नहीं चाहती, लेकिन तीन जजों की बेंच में एक जज ने यह साफ किया है कि सीबीआई या कोई और एजेंसी जांच करें तो उसकी मनाही नहीं है। जांच की अर्जी डालने वाले प्रशांत भूषण, अरुण शौरी और यशवंत सिन्हा सीबीआई को पहले ही इस मामले की विस्तृत जानकारी दे चुके हैं। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद फिर वे सीबीआई के पास गए, लेकिन सीबीआई की ओर से कोई हलचल नहीं हुई। यह क्या बताता है ? अगर सौदा पाक-साफ है तो जांच से काहे को मुकरना।



राष्ट्र निर्माण का गांधी मार्ग

आनंद कुमार

27 सितंबर को किशन पटनायक स्मृति दिवस पर गांधी शांति प्रतिष्ठान में दिया गया भाषण। प्रो. आनंद कुमार प्रख्यात समाजवादी हैं और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्रोफेसर रहे हैं।

आज जो सवाल सभी और खासकर समाजवादियों के लिए सबसे जागृत है, वह है भारत के राष्ट्र-निर्माण का भविष्य। ठीक उसी तरह जैसे 1930-34 की पीढ़ी के सामने स्वराज को आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अंतरतत्वों से सुशोभित करने की जिम्मेदारी थी। इसलिए 1948 से पहले समाजवादियों ने किसी और चीज को प्राथमिकता नहीं दी। चिड़िया की आंख की तरह स्वराज को देखते रहे और स्वराज के लिए अपने रुख को लचीला बनाए रखा। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का नेतृत्व करके ऐतिहासिक योगदान दिया। लेकिन आज आजादी के 73 वर्ष बाद जब पूंजीवाद पूरी तरह छाया हुआ है और उतनी ही बुरी तरह से परास्त भी खड़ा है जैसे बिना कपड़ों के राजा, तो राष्ट्रीयता और राष्ट्र-निर्माण के सवालों को वैकल्पिक विमर्श के हिस्से के रूप में पेश करना हम सबकी जिम्मेदारी है।

भूमंडलीकरण और 1992 के आर्थिक उदारीकरण ने पिछले 30 साल में राष्ट्रीयता को ही सबसे ज्यादा कमजोर और प्रभावित किया। इस दौरान हमने लोकतंत्र का जो धीरे-धीरे बदलता, बिगड़ता हुआ रूप देखा, उसमें कारपोरेट पैसे का योगदान है। लोकतांत्रिक निर्माण की प्रक्रिया तो पूरी तरह से अवरुद्ध ही हो गई। लोकतांत्रिक राष्ट्र-निर्माण में जिस प्रक्रिया की सबसे बड़ी मान्यता थी, वह थी चुनाव और राजनैतिक दलों की गतिविधियां। ये दोनों ही इस समय कारपोरेट के पैसे में गले तक डूबी हुई हैं। लोकतंत्र की दो बुनियादी प्रक्रियाएं पार्टी निर्माण और चुनाव दोनों आम लोगों के दायरे के बाहर चली जाएं, तब हम क्या करें?

मैं सबसे पहले आपके सामने किशन पटनायक जी की रचना से कुछ वाक्य रखना चाहूंगा, जिससे आपको लगे कि वह क्या कसक थी, वह क्या तेवर थे और किसलिए किशन पटनायक को हम आज पीछे मुड़कर देखते हैं तो लगता है कि जनतांत्रिक आंदोलन और समाजवादी आंदोलन के वे कबीर जैसे थे। किशन जी की एक किताब में से सबसे पहले मैं उनके गुरु और आप सबके प्रिय लोहिया और लोहियावादियों का विवरण देता हूं। वे लिखते हैं, ''लोहिया की तीन विशेषताएं थीं। सत्ता के प्रखर विरोध के माहौल में भी लगातार काम करना। नीति को सबसे ज्यादा प्रमुखता, व्यक्ति और नेता को सबसे कम महत्व देना और तीसरा निरंतर कर्म साधना।''

फिर 1980 में उन्होंने लोहियावादियों के बारे में लिखा, ''इस वक्त लोहियावादियों में न तो नीति प्रखरता है। न कर्म प्रखरता, संगठन की प्रखरता तो लोहिया के दिनों के बाद से कभी नहीं रही। फिर आत्मसमीक्षा करने की आवश्यकता है। लोहियावाद का पतन केवल सरकारी और प्रतिष्ठित लोहियावादियों के द्वारा ही नहीं हुआ है, बल्कि पद और सत्ता से दूर रहने वाले हम



तथाकथित कुजात लोहियावादियों के द्वारा भी हुआ है क्योंकि हमारे दो मुख्य अवगुण हैं-पहला कठमुल्लापन और दूसरा निष्क्रियता।''

किशन जी हमारे समाज और संस्कृति के बारे में लिखते हैं, ''भारतीय संस्कृति और समाज का मौलिक गुण वर्ण-संकर है। उसकी ताकत और कमजोरी दोनों उसी में निहित है। बौद्ध प्रभावित समाज ने सारे भारत को राजनैतिक तौर पर एकत्रित किया और भारतीय संस्कृति को एशिया में फैलाया। ...शंकराचार्य ने हिंदू समाज के नेतृत्व में आत्मविश्वास जरूर पैदा किया, लेकिन सामाजिक गतिशीलता पैदा करने की ताकत बौद्ध प्रभाव के बाद फिर कहीं से नहीं निकली।''

अब जरा इस्लाम के बारे में उनको सुनिए, ''जब मुसलमान आए उनको न रोकने की, न अपने को बचाने की ताकत हिंदू समाज में थी। मुसलमान भी ऐसे ही थे कि अपने को लादने की कोशिश में उन्होंने समाज पर अपनी पकड़ खो डाली और अंततः ऐसे विदेशियों के आगे देश को सौंप दिया, जो हिंदुस्तान को अपनाना भी नहीं चाहते थे यानी ब्रिटिश राज।''

अब एक ताजा तस्वीर। किशन जी 2004 में हमारे बीच से गए। आज 15 साल हो गए यानी एक पूरी पीढ़ी गुजर गई। उस समय उन्होंने जिस रोग की पहचान की, आज शायद उनको फिर कहना पड़ता तो और तीखे तरीके से कहते। ''हिंदुस्तान में एकता की बजाय अनेकता बढ़ रही है। विषमतामूलक वर्ण-संकर नीति का यह अंजाम कालक्रम में होना अनिवार्य था। इसकी काट के लिए एक समतामूलक वर्ण-संकर नीति की जरूरत होगी, जिसके तहत नगा से लेकर सिख तक और भील से लेकर मुसलमान तक एक ही सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत हो सकें। यह एक धार्मिक ढांचा नहीं हो सकता। राष्ट्रीयता के ढांचे में ही यह संभव है।'' राष्ट्रीयता को यह समावेशी अर्थ देने की कोशिश सिर्फ गांधी जी ने की थी।

हमारे समाज में जो लोग देश निर्माण का कोई मौलिक उपाय ढूंढ़ रहे हैं और सामाजिक प्रश्न यानी जाति, सांप्रदायिकता, लिंगभेद वगैरह को भारत के बनने-बिगड़ने का मुख्य कारक मानते हैं, लेकिन जिनको यह परेशानी रहती है कि गांधी और आंबेडकर के टकराव का क्या करें? तो किशन जी की राय है,

राष्ट्रीयता को समावेशी अर्थ देने की कोशिश सिर्फ गांधी जी ने की थी, जिसके तहत नगा से लेकर सिख तक और भील से लेकर मुसलमान तक एक ही सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत हो सकें। राष्ट्रीयता के ढांचे में ही यह संभव है

''सामाजिक प्रश्न पर गांधीवादी समूहों का कोई अभियान या कार्यक्रम अरसे से दिखाई नहीं पड़ता। आंबेडकर के प्रति और आरक्षण के प्रश्न पर वे चुप्पी साध जाते हैं। आंबेडकरवादी आरक्षण को छोड़कर सामाजिक प्रश्न के किसी अन्य पहलू को नहीं मानते हैं। गांधी के प्रति उनका आक्रोश अपरिवर्तित है और विचारों के केंद्र में रहा है। मानो वे 1930 के दशक में अभी भी है। यह मुख्यधारा की बात है। अपवाद बहुत हैं।''

फिर किशन जी कहते हैं, नागराज और देवनूर महादेव सर्वोदय पार्टी कर्नाटक, बड़े भारी कन्नड़ साहित्यकार का जिक्र करते हैं। और फिर किशन जी थकते नहीं हैं आगे की बात भी कहते हैं- ''अब समय आ गया है कि पिछड़ा नेतृत्व अपनी एक विचारधारा व्यक्त करे। पूंजीवाद का विरोध, पिछड़ों की स्वाभाविक विचारधारा है क्योंकि उनका समूह गांव से, खेत से छोटे स्तर से, भारतीय भाषाओं से जुड़ा हुआ है। वरना पिछड़ा राजनीति अलग-अलग जातियों में विभक्त हो जाएगी। जैसे वर्गविहीन समाज के लक्ष्य को कम्युनिस्ट भूल जाता है, उसी तरह लोहियावादियों और आंबेडकरवादियों ने अपने जातिविहीन समाज के लक्ष्य को भूलकर आरक्षण और सत्तापरस्ती को एकमेव लक्ष्य बनाकर दबे हुए समाज के कुछ अंशों को संपन्न और सत्तावान तो बना दिया, लेकिन क्रूर जाति व्यवस्था को ज्यों का त्यों छोड़ दिया है। असल में मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद और कांशीराम जैसे लोग न लोहियावादी हैं, न आंबेडकरवादी हैं, ये सारे लोग विश्वनाथवादी हैं।''

और क्या करना है, इस बारे में किशन जी की राय है, ''वर्ग संगठन यानी आर्थिक विषमता के खिलाफ गरीबों का संगठन जरूरी है। इसके बगैर भारत की सामाजिक गैर-बराबरी खत्म नहीं होगी, क्योंकि गरीब जाति प्रथा में बने हुए हैं। जाति में विश्वास के कारण उनमें बराबरी में विश्वास नहीं बन पाता। अतः भारत के समाजवादियों और साम्यवादियों को दोहरा संघर्ष चलाना होगा, एक साथ दोनों मोर्चों पर लड़ना होगा, यानी वर्ग और जाति से।''

फिर किशन जी ने इस किताब में समाजवाद की राजनीति की पुनर्स्थापना की संभावनाओं का पूरा साहस के साथ जिक्र किया। ''यदि समाजवाद मानव समाज में असमानता की नंगी सच्चाई के खिलाफ एक नैतिक प्रतिक्रिया है तो आज की दुनिया में ऐसा बहुत कुछ है, जिसके खिलाफ हर पीढ़ी के संवेदनशील लोगों में ऐसी प्रतिक्रिया होती है। यह आशा जगती है कि नई पीढ़ी एक



किशन पटनायक स्मृति व्याख्यान

सारगर्भित, समतावादी राजनीति को पुन: स्थापित करेगी। बराबरी वाले राष्ट्रों की दुनिया के सपने को पुन: प्रतिष्ठित करेगी। समाजवाद को पुन: परिभाषित करेगी। नए अंतरराष्ट्रीयतावाद की पुन: स्थापना करेगी। समाजवाद मानव समाज की बुनियादी आवश्यकता है। इसके बगैर मानव सभ्यता की शुरुआत नहीं हो पा रही है। आज हमको इसकी पुनर्परीक्षा करनी चाहिए कि आधुनिक उत्पादन तंत्र और समाजवाद का अंतरविरोध कहां-कहां है।''

फिर वे कहते हैं, ''आधुनिक उत्पादन तंत्र अनिवार्यत: केंद्रीयकरण का तंत्र है। इस उत्पादन प्रणाली को पूरे विश्व में लागू नहीं किया जा सकता। इसके साथ समृद्धि और सुख की जो अवधारणा अभिन्न ढंग से जुड़ी है, वह एक मौलिक रुकावट है। इसलिए वैकल्पिक विकास की नीति पर चर्चा का महत्व सर्वोपरि है। इस चर्चा का संबंध राजनीति और अर्थनीति से लेकर विज्ञान और धर्म तक, मनुष्य के संपूर्ण शास्त्र से है। इस बहस को शुरू किया था गांधी जी ने।'' यह दूसरा बिंदु है जो आज के विषय की प्रासंगिकता को किशन जी के शब्दों में सिद्ध करता है।

अब मार्क्सवाद के बारे में भी किशन जी की सोच को सुन लीजिए। ''मार्क्सवाद आज एक ऐसा विचार है, जिसमें गतिशीलता है। इसमें कुछ ऐसा तत्व है, जो वस्तुस्थिति को हमेशा नए सिरे से समझाने के लिए प्रेरित करता है। दूसरी विशेषता यह है कि सही ज्ञान वही माना जाएगा, जिससे परिस्थिति को बदला जा सके। अब समय है कि मुख्य चुनौतियों का हम समाजवादी और साम्यवादी मिलकर अध्ययन करें। एक, पूंजीवाद का सिर्फ संबंध बदलना है या उसकी तकनीक और प्रबंधन? दूसरे, आर्थिक समता क्या है और समता के साथ औद्योगिक विकास कैसे होगा? आर्थिक विकास किसलिए और कहां तक? तीसरे, आर्थिक समानता और लोकतंत्र को साथ चलाने के लिए किस प्रकार का लोकतांत्रिक ढांचा जरूरी होगा? क्या बुर्जुआ लोकतंत्र से साम्यवाद का काम चल सकता है? और आखिरी सवाल, क्या पूंजीवादी संस्कृति को अपनाकर वैकल्पिक तकनीक, वैकल्पिक लोकतंत्र, वैकल्पिक अर्थनीति संभव होगी? वैकल्पिक संस्कृति और दर्शन का क्या होगा?''

तो, नया समाजवाद कैसा होगा?

भारत के राष्ट्र निर्माण के संबंध में सात बहसें चलीं और सातों के केंद्र में गांधी रहे हैं। गांधी ने भारत की राष्ट्रीयता की बनावट को तीन चरणों में समझा, दक्षिण अफ्रीका प्रवास, चंपारण और असहयोग आंदोलन तथा उसके बाद।

किशन जी की मान्यता के हिसाब से ''नया समाजवाद पुराने भारतीय और यूरोपीय समाजवाद का पुनरुत्थान नहीं होगा। वह अपनी विरासत तो प्राप्त करेगा, लेकिन गलतियों से भी सबक लेगा।'' दूसरे, उन्होंने कहा कि ''समाजवाद एक दोहरी विचारधारा है।'' और यह ताजा बात थी। इसमें पूंजीवाद के खात्मे के लिए संघर्ष तो है ही, दूसरी तरफ गरीबी और अमीरी का समान वितरण भी समाजवाद की जिम्मेदारी है।

इसके पहले के चिंतन में यह कहा जाता था, जवाहरलाल नेहरू जी ने भी कहा था कि बांटने के लिए तो खाली गरीबी ही है, इसलिए रुकना पड़ेगा। पहले संपन्नता पैदा कर लो, तब उसका बंटवारा किया जाएगा। गांधी जी का मानना था कि गरीबी का भी बंटवारा करना बहुत जरूरी है। लोकभूषा, लोकभाषा, लोक भोजन, लोक भवन की जरूरत है। साबरमती के आश्रम को देखिए, सेवाग्राम के आश्रम को देखिए तो डेढ़ कमरे की झोपड़ी है। गले में टाई बांधा हुआ उनका चित्र यहां दिखाई पड़ेगा, जब वे इंग्लैंड पढ़ने जाते हैं और जब वे चंपारण से आगे बढ़ते हैं तो लंगोटी धारण कर लेते हैं। खुद ही नहीं, सबको पहना देते हैं। सबके खान-पान, आचार-विचार सबमें परिवर्तन करते हैं। यह गरीबी का बंटवारा है। यह समाजवादियों के चिंतन में गांधी का अनुपम योगदान था, जो मार्क्सवादियों के यहां नहीं है। उनकी विरासत में संपन्नता का तो सपना था, लेकिन गरीबी के बंटवारे के प्रश्न पर कोई बात नहीं थी। किशन जी कहते हैं कि माओ त्से तुंग ने यह किया था। उनके दौर में गोबर गैस का चूल्हा चीन ने बनाया, सादगी पैदा की, लेकिन उसकी चर्चा भारत के कम्युनिस्टों को करने की जरूरत महसूस नहीं होती।

दूसरी महत्वपूर्ण बात किशन जी ने नई पीढ़ी के लिए कही। ''टेक्नोलॉजी का जमाना है, समाजवाद के दूसरे चरण में सापेक्षिक समृद्धि के लिए टेक्नोलॉजी में परिवर्तन करना आवश्यक होगा। और पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष के साथ-साथ वैकल्पिक संस्कृति का प्रचार और प्रसार करना आवश्यक है। इसका दायित्व होगा कि मनुष्य को उपभोक्तावाद के प्रति ललक से मुक्त करे।'' और वे कौन लोग होंगे, क्या करना होगा? आज देश में विद्रोही जनसमूहों के रूप में पिछड़े क्षेत्र, पिछड़ी जातियां, दलित और आदिवासी समूह और कृषि क्षेत्र की जनता सामने आ रही है और उसकी यह प्रक्रिया बनी रहे, हमारी जिम्मेदारी है कि इनके युवा



समूहों को नई अवधारणाओं में दीक्षित करें और समाज में आदर्शवाद का माहौल पैदा करें।

आज बहुत सारी बातें हो रही हैं-देश को लेकर। मैंने पिछले पंद्रह-बीस मिनट में आपको किशन जी के साथ संवाद के लिए जोड़ने की कोशिश की।

जहां तक भारत के राष्ट्र निर्माण की चुनौती का सवाल है-सात बहसें चलीं और सातों के केंद्र में गांधी का विमर्श था। गांधी जी ने भारत की राष्ट्रीयता की बनावट को समझा, उसमें तीन चरण थे-पहला चरण जब वे दक्षिण अफ्रीका गए, दादा अब्दुल्ला के मुलाजिम होकर। वहां उन्होंने छह भाषा-भाषी समूहों का संवाद देखा। हिंदी, तमिल, खुद तो गुजराती थे ही, बंगाली, उर्दू, पंजाबी। मोटे तौर पर तीन धर्मों के साथ उनका अंतरंग संबंध बना। हिंदू, मुसलमान और ईसाई। और फिर उन्होंने दो आश्रम बनाए। एक, टॉलस्टाय फॉर्म जो यहूदी इंजीनियर मित्र केलन बाख की मदद से 1000 एकड़ में बना। वहां उन्होंने सह जीवन शुरू किया। दूसरे, फिनिक्स आश्रम। तो, सामुदायिक जीवन की जो बनावट होती है, उसमें जाति, स्त्री-पुरुष, वर्ग, शिक्षा, भाषा, धर्म से जुड़े तमाम भेदभाव को उन्हें नजदीक से समझने का मौका 20 बरस तक मिला।

उसके बाद दूसरा चरण था, जब वे चंपारण गए। चंपारण के बारे में उन्होंने अपनी आत्मकथा में सबसे ज्यादा लिखा। उसको और विस्तार से राजेंद्र बाबू ने लिखा। चंपारण में उन्होंने खाली निलहा साहबों का अत्याचार नहीं देखा। गांधी को वहां भारत के समाज का विकृत, स्थानीय, देशज रूप दिखाई पड़ता है। स्त्रियों की दशा, बच्चों का हाल, बच्चों पर माता-पिता की क्रूरता, जातियों का फासला, धर्मों का फासला। डेढ़ बरस गांधी जी वहां थे। और खुद नहीं, उन्होंने कस्तूरबा को बुला लिया, तीन-चार डॉक्टरों को बुलाया। यहां सबसे बड़ी जरूरत थी दवाई की, फिर किसानों के बीच में रोजगार का संकट, निर्धनता का संकट था।

तीसरा चरण तब बनता है जब गांधी जी ने 1923-24 से 1941-42 तक संसदवादी कांग्रेसजन की तुलना में गांधी सेवा संघ का संरक्षण किया। 1923 में आप जानते हैं कि 1920-21 का असहयोग आंदोलन असफल हो गया था। चौरी-चौरा के कारण वापस ले लिया गांधी जी ने। उन्होंने कहा कि अहिंसा और स्वराज में अगर हमको चुनना होगा तो हिंसक स्वराज की तुलना में हम अहिंसा को चुनेंगे। उसके बाद वही हुआ, जब कोई नेता अपने कदम पीछे खींचता है। कांग्रेस में वोट से फैसला हुआ था कि असहयोग में जाना है या नहीं। एनी बेसेंट, जिन्ना वगैरह ने इसके खिलाफ वोट किया था। मोतीलाल नेहरू भी दुविधा में थे, चित्तरंजन दास भी खिलाफ थे। ऐसे में इन नेताओं ने कहा कि अब 1924 का चुनाव आ रहा है, चुनाव में उतरना चाहिए। लेकिन असहयोग आंदोलन के दौरान जो लोग जेलों में बंद थे, उन्होंने कहा कि नो चेंज। कांग्रेस में नो चेंजर और प्रो चेंजर दो धड़े बन गए। प्रो चेंजर चुनाव चाहते थे, उनको स्वराज पार्टी बनाने की इजाजत मिली। चुनाव लड़े, जीते।

यह बड़ी गलतफहमी है कि गांधी की दृष्टि में विश्व निर्माण, अहिंसक मानव समाज की रचना की बात की अहमियत ज्यादा थी। राष्ट्रीयता में उनकी आस्था नहीं थी। सच्चाई यह है कि समावेशी राष्ट्रीयता सिर्फ गांधी के पास ही है।

जो नो चेंजर थे, उन्होंने गांधी सेवा संघ बनाया। 1923 से 1940 तक यह गांधी सेवा संघ चला, जिसमें छह-साढ़े छह सौ लोगों ने पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में काम किया। इसमें कृपलानी, राजेंद्र प्रसाद, किसी को 15 रुपया, किसी को 25 रुपया, किसी को 35 रुपया माहवारी अलाउंस मिलता था। उन्होंने अपने-अपने इलाकों में तमिलनाडु के राजा जी से लेकर बिहार के राजेंद्र बाबू ने लगातार काम किया और विवरण दिया कि कहां पर क्या सवाल है? सूची बनते-बनते एक 18 सूत्रीय सूची बनी कि देश को अगर बनाना है, नीचे से बनाना है, आम लोगों की मदद से बनाना है तो क्या-क्या करना पड़ेगा तो गांधी जी ने 18 कार्यक्रमों को पहचाना और उसका नाम बना रचनात्मक कार्यक्रम। इस रचनात्मक कार्यक्रम को कौन लागू करेगा तो उन्होंने कहा कि लागू तो सभी कर सकते हैं। एक बच्चा भी कर सकता है, पर उसके लिए निष्ठावान मनुष्यों की जरूरत होगी। और यह आम लोगों से काम नहीं चलेगा। एक आदर्श गति होना चाहिए। सर्वग्रथ्य है, लेकिन हमको और आपको बहुत कठिन लगेगा। उन्होंने कहा कि मैं जो कह रहा हूं, ऐसा होगा ये मजाक बनाया जाता है और इस मजाक को मैं वास्तविक मानता हूं। क्योंकि यह कल्पना में ही ऐसा भारत है, वास्तविकता में नहीं है। लेकिन अगर कुछ मुट्ठीभर भी निष्ठावान कार्यकर्ता जुट जाएं और अपना सबकुछ दांव पर लगाएं तो ऐसा भारत बनना जरूर मुमकिन है। उसी रचनात्मक कार्यक्रम को किशोरलाल मशरूवाला जी ने राष्ट्र निर्माण का कार्यक्रम कहा।

यह बड़ी गलतफहमी है कि गांधी ने विश्व निर्माण का भरोसा दिया। अहिंसक मानव समाज की रचना की बात की।



राष्ट्रीयता में उनकी आस्था नहीं थी। राष्ट्रीयता में आस्था तो सावरकर की थी। सात लोगों की बहसें थीं-एक बहस थी सावरकर की कि भारत का सारांश क्या है ? तो उन्होंने कहा कट्टर हिन्दू जो क्षमा नहीं करना जानता, जो अपराधी की गर्दन उतारेगा और इसलिए उन्होंने बुद्ध को खारिज किया, अशोक को खारिज किया। एक बड़ी किताब लिखी है सावरकर ने भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम अध्याय, उसमें अशोक और बुद्ध नहीं हैं।

दूसरी बहस थी-बाबा साहेब आंबेडकर के साथ कि स्वराज का कोई मतलब नहीं है क्योंकि गांव-गांव में दलितों के साथ जो अमानवीय बर्ताव हो रहा है, उसका कोई समाधान नहीं है आपके पास। राजनैतिक स्वराज से क्या बनना है जब तक सामाजिक समता नहीं आएगी। सामाजिक समता आपके जैसे संत-महात्माओं के कहने से नहीं आएगी। यह हजार साल से संतों की परंपरा चली आ रही है कि वे जाति को नहीं मानते। गाते रहते थे, भजन करते थे, कथा करते थे, लोग उनको फूल-माला चढ़ाते थे। लेकिन लौटकर वे छुआछूत को जस का तस मानते रहते थे।

तीसरी बहस थी-हिंसा और अहिंसा वालों की। ऐसे लोगों का यह मानना था कि विषमता खासतौर से आर्थिक विषमता इतनी है कि लोग कभी स्वेच्छा से नहीं बदलेंगे। जबर्दस्ती हिंसा के बल पर, हिंसा के आतंक से ही जमीनें छुड़वाई जाएंगी और कारखानों का समाजीकरण किया जाएगा। यह कम्युनिस्टों का चिंतन था, आज भी माओवादी मित्र उस प्रश्न पर गांधी को कठघरे में खड़ा करते हैं।

चौथी बहस जिन्ना साहब ने उठाया था। पहले जिन्ना साहब हिन्दू-मुसलमान को एक ही संस्कृति के दो पहलू मानते थे। लेकिन धीरे-धीरे फासला बढ़ा। हिन्दू और मुसलमानों के मध्यम वर्ग में पढ़ा-

आज जिस तरह से भारत के अंदर फिर से हिन्दू, मुसलमान का सवाल उठा है या कुछ दिनों पहले खालिस्तान का सवाल पंजाब में था। तो, यह सवाल फिर अहम हो गया है कि राष्ट्र निर्माण में धर्म का क्या स्थान है ?

लिखा शहरी अपने-अपने दावों के साथ दो-राष्ट्र सिद्धांत का प्रचार करने लगा। इस सिद्धांत के मूल प्रचारक जिन्ना साहब तो नहीं थे। यह बात तो सावरकर से आई थी, लेकिन जिन्ना साहब भी इसको मानने लगे। और उन्होंने गांधी को बराबर कहा कि आप हिन्दू हो, कांग्रेस हिन्दू पार्टी है, उसमें अबुल कलाम आजाद जैसे लोग पोस्टर ब्वॉय हैं, मुसलमानों का इसमें कोई स्थान नहीं है। 1937-39 के बीच जो दो-ढाई साल कांग्रेसी सरकारें चली, सात-आठ सूबों में, उसमें भाषा नीति, वंदेमातरम, खान-पान वगैरह को लेकर उत्तर भारत खासतौर पर उत्तर प्रदेश में यह शिकायत साबित हो गई कि अधिकांश कांग्रेसी खुरचने के बाद कांग्रेसी नहीं रह जाते, हिन्दू दिखाई पड़ते हैं।

1940 आते-आते पाकिस्तान का मुद्दा गरम हो गया। फिर पाकिस्तान बनने के बाद, गांधी जी की हत्या के बाद, एक करोड़ लोगों के विस्थापन और दस लाख लोगों के मारे जाने के बाद, ऐसा लगा कि जिन्ना सही थे और गांधी गलत। लेकिन जब पाकिस्तान टूटा बांग्लादेश बना तो फिर एक बार लोगों को याद आई कि धर्म के आधार पर राष्ट्रीय एकता नहीं होती है।

राष्ट्रीयता के निर्माण के लिए और बहुत-कुछ चाहिए। लेकिन आज जिस तरह से भारत के अंदर फिर से हिन्दू, मुसलमान का सवाल उठा है या कुछ दिनों पहले खालिस्तान का सवाल पंजाब में था उसमें अस्सी के दशक में हमारे एक प्रधानमंत्री इंदिरा जी की आहुति हुई। तो सवाल यह है कि राष्ट्र निर्माण में धर्म का क्या स्थान है ?

फिर पांचवीं बहस चली, जिसको जवाहरलाल नेहरू ने उठाया। पंडित नेहरू को 1944-45 में गांधी जी ने बुलाया और कहा कि दिन नजदीक आ रहे हैं, अब जिम्मेदारियां हमको उठानी हैं। तुम मेरे राजनैतिक उत्तराधिकारी हो, मुझे तुम्हारी समझ पर बहुत गर्व और भरोसा है, आओ बैठकर बात करें। बात हुई, लंबी बात हुई। पहले गांधी जी ने चिट्ठी लिखी कि जो बात हुई उसको दर्ज कर लें। फिर नेहरू ने जवाब में लिखा, ''मैंने यह सोचा था कि आपने पिछले 20-30 बरस में नई परिस्थितियों को नजदीक से देखा है और आपके विचारों में कुछ बदलाव हुआ है। लेकिन मुझे ताज्जुब हो रहा है कि आप 1945 में कहते हैं कि आप हिन्द स्वराज, जो 1909 में लिखा गया था, उसी के साथ जस के तस ठहरे हुए हैं। बापू, मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि आपने कभी भी कांग्रेस के मंच पर हिन्द स्वराज की तस्वीर को कबूल नहीं करवाया था और कांग्रेस ने इसको कभी माना नहीं। अब तो उसको मानने का कोई सवाल ही नहीं।''

नेहरू की वह बहस आगे जारी रही। आपको मालूम है किस तरह से भारतीय संविधान का जब प्रारूप बन गया, तो शायद विनोबा ने पूछा कि इसमें गांवों के लिए क्या है। पता चला कि गांव तो छूट ही गया तो जल्दी-जल्दी करके राज्य के नीति-निर्देशक तत्व जोड़ा गया, ताकि बापू एकदम से उसे खारिज न कर दें।

एक बहस जो समाजवादियों के साथ चली, वह थी कि हम नवनिर्माण कब



करेंगे, स्वराज आने के बाद या आज से शुरू करेंगे। गांधी जी ने समाजवादियों को लिखा, ''तुम्हारी पूरी तस्वीर में ऐसा आकर्षण है कि मुझे तो नशा हो गया और मैं हर नशे वाली चीज से घबराता हूं। इसमें चार सवालों का जवाब नहीं है। हिन्दू और मुसलमान के बारे में तुमने कोई ठोस समाधान नहीं दिया है। अस्पृश्यता के बारे में कोई चर्चा नहीं है। ये शराबखोरी बढ़ रही है, भोग बढ़ रहा है, इसका क्या करोगे। और शरीर श्रम के बारे में भी तुम लोग चुप हो।''

गांधी जी शारीरिक श्रम की बात करते थे, रोज चरखा कातने की बात करते थे। आपको मालूम होगा कि 1933-34 में गांधी जी का यह प्रस्ताव था कि कांग्रेस की सदस्यता के लिए अमुक मात्रा की सात सौ फुट या ऐसा ही कुछ की हुंडी होनी ही चाहिए। लेकिन इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी से पढ़कर आए लड़कों को यह रास नहीं आया और यह प्रस्ताव गिर गया। कहा गया कि चार आने की सदस्यता ही काफी है। प्रस्ताव गिर जाने के बाद गांधी जी ने कांग्रेस की सदस्यता से बाकायदा इस्तीफा दिया। उन्होंने कहा कि नए लोग आ गए हैं, जिनका मेरा बैठता नहीं है। फिर गांधी जी 1934-48 तक कांग्रेस के मार्गदर्शक तो रहे, लेकिन सदस्य कभी नहीं रहे।

आखिरी बहस कम्युनिस्टों के साथ थी उनकी। पी.सी. जोशी उनसे बराबर मिलते थे। वर्ग को लेकर लंबी-लंबी चिट्ठियां लिखते थे, उसको छापते भी थे। गांधी सर्वोदय की बात करते थे और कम्युनिस्ट वर्ग संघर्ष की बात करते थे। गांधी के लिए समाधान ट्रस्टीशिप का था। और कम्युनिस्टों के लिए उदाहरण सोवियत यूनियन और चीन में वर्ग संघर्ष का था।

दरअसल गांधी के राष्ट्र निर्माण के मार्ग के चार स्तम्भ हैं। इन चार स्तम्भों के आधार पर हमको अपने राष्ट्र की रचना का काम करना है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक सांस्कृतिक। सामाजिक प्रश्नों में उन्होंने हिन्दू-मुसलमान का संबंध, छुआछूत की चुनौती, अस्पृश्यता निवारण, स्त्री की दशा या आदिवासियों का हाल और भयंकर रोगों से ग्रस्त लोगों की दशा। उस समय कोढ़ियों का मामला था, अभी आप उसको एचआईवी एड्स या किन्हीं और बीमारियों से जोड़ सकते हैं, जिसके होने पर परिवार वाले भी छोड़ देते हैं। और वह समाज का ही एक जिम्मा बनता हैं। ईसाई मिशनरी के लोग जो काम करते थे, गांधी जी उसकी बड़ी तारीफ करते थे।

गांधी जी ने जो उस समय कहा, वह अभी भी चल रहा है चारों तरफ। आज भी अगर आप उन्हें हिन्दू-मुसलमान के सवाल को लेकर पढ़िए, जो उन्होंने उस समय कहा, वह आज भी सच है। उन्होंने कहा कि हम लोग ऊपरी तौर पर सद्भाव की बात करते हैं। हमारा आपस का आना-जाना, मिलना-जुलना राजनैतिक रिश्ता है। गांधी जी ने 1947-48 में कहा कि हमको कोशिश करनी चाहिए, हर कांग्रेसी को कि खाली अपने को अपने धर्म का ना समझे, अन्य धर्मों के साथ भी अपनी निकटता बढ़ाए। जिससे कांग्रेसी के आचरण से लगे कि वह हिन्दू और मुसलमान ही नहीं है, ईसाई भी है, सिख भी है, बौद्ध भी है, जैन भी है। और उसके तरीके के तौर पर उन्होंने सर्वधर्म प्रार्थना की बात की, ताकि सबके धर्म ग्रंथों को जाना-पहचाना जा सके।

गांधी के राष्ट्र निर्माण के मार्ग के चार स्तम्भ हैं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक। सामाजिक प्रश्नों में हिन्दू-मुसलमान, अस्पृश्यता निवारण, स्त्री, आदिवासियों का हाल और भयंकर रोगों से ग्रस्त लोगों की दशा

आज 2019 में भारत के 14-15 करोड़ लोग अपने पुरखों को तोहमत लगाते हैं कि कितना गलत किया कि यहीं रह गए। पाकिस्तान न जाने का फैसला हमारे अब्बा या दादा ने बिल्कुल गलत किया, क्योंकि आज हमको अपने को लगातार साबित करना पड़ता है कि हम पक्के भारतीय हैं, चाहे क्रिकेट मैच हो, चाहे पुलवामा या बालाकोट हो, चाहे कश्मीर हो। और हिन्दू-मुसलमान भारत माता की दो आंखें हैं-ऐसा कहने वाले सर सैयद अहमद की चर्चा नहीं होती-सारे जहां से अच्छा-हिन्दोस्तां हमारा, तराना इकबाल का है, उसकी चर्चा नहीं होती क्योंकि इकबाल ने बाद में अपने को इस्लामिक बना लिया।

खोज-खोज कर हमको निकालना पड़ता है, अभी पिछले दिनों छपी *लहू बोलता है* किताब में डेढ़-दो हजार मुसलमानों के नाम हैं, जिन्होंने 1857-60 से लेकर 1947 तक आजादी की लड़ाई में बार-बार कुर्बानियां दीं, लेकिन उनकी चर्चा नहीं होती। भुला दिया जाता है।

दूसरा सवाल अस्पृश्यता का है। बाबा साहेब आंबेडकर संविधान के बड़े विशेषज्ञ थे। वे इंस्टीट्यूशनलिस्ट थे। वे व्यक्तियों के मान-मनौवल, हृदय परिवर्तन में यकीन नहीं करते थे। उन्होंने कहा कि जब कानून बन जाएगा तो राज्यसत्ता को उस कानून को मानना पड़ेगा। और जब राज्यसत्ता इस कानून के साथ खड़ी होगी तो समाज में जो विचलन करेंगे, उस कानून को तोड़ेंगे, उनको सजा मिलेगी और बुनियाद बदलने लगेगी। गांधी जी का मानना था कि कानून तभी कामयाब होते हैं, जब समाज



में पहले उसका चलन हो जाए। अगर आचरण में आने लायक नहीं है तो कानून बेकार होता है।

आज का दलित शहर में, महानगर में, दिल्ली में तो ठीक-ठाक महसूस करता है, क्योंकि उसकी जाति का पता नहीं चलता। लेकिन गांवों में तो सात पुश्तों का पता चलता है। कभी-कभी तो किसी विश्वविद्यालय में रोहित वेमुला जैसी घटना हो जाती है, उसके मां-बाप का पता चल जाता है, उसके बाद फिर सारा रुख बदल जाता है। दलितों के अंदर एक अभिजात्य वर्ग पैदा हो गया है, वह बहुत मुखर है। लेकिन उसकी मुखरता का आधार जैसा किशन जी ने लिखा- आरक्षण को ले करके चली बहसें हैं, जाति प्रथा की क्रूरता के बारे में मौन हैं। इसलिए जब सीवर की सफाई में नंगे बदन मेहतर उतारे जाते हैं और मौत होती है तो बस एक चिट्ठी और जारी हो जाती है कि हमारा आरक्षण पूरा करो। आरक्षण और मेहतरी एक साथ चल रही है। इसलिए विल्सन बेजवाड़ा की लड़ाई को तो ठीक कहा जाता है, लेकिन हमारे बहुत से लोग उस लड़ाई के साझीदार नहीं है। अंतरजातीय विवाह नहीं है, खानपान नहीं है। गांधी के उस सूत्र को देखना पड़ेगा।

स्त्री का प्रश्न- भारत की औरतों के मन में जो आत्मविश्वास पैदा हुआ, राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राजकुमारी अमृत कौर, सरोजिनी नायडू, प्रभावती, सुचेता कृपलानी, अरुणा आसफ अली, ऊषा मेहता, बंगाल से ले करके केरल तक एक पूरी कतार खड़ी हो गई औरतों की। गांधी की रणनीति के कारण, सत्याग्रह की इस क्षमता के कारण आज धीरे-धीरे औरतें एक मोड़ पर आकर ठिठक गई है। 12-13 प्रतिशत से ऊपर किसी विधानसभा किसी लोकसभा में उनको जगह नहीं मिल पा रही है। सीट गंवानी हो तो औरत को टिकट दे दो, अरे भाई राज्यसभा और विधान परिषद में तो सीट गंवानी नहीं रहती है, वही ले आओ उनको। पार्टी के पदाधिकारियों में सीट गंवाने का सवाल नहीं है, वहीं ले आओ उनको। अगर ले भी आए तो बहू-बेटी-बहन के अलावा कोई दूसरी औरत दिखाई नहीं पड़ती।

फिर सार्वजनिक जीवन में औरत के लिए लगातार एक गृहयुद्ध जैसी स्थिति है। सायं सात बजे के बाद अगर कोई औरत सार्वजनिक स्थानों पर जाए, तो निर्भया की गति हो सकती है।

चौथा सवाल है आदिवासियों का- ठक्कर बप्पा की अगुआई में राष्ट्रीय आंदोलन में आदिवासियों की शिरकत बढ़ी। उस परंपरा को बाद में समाजवादियों ने आगे बढ़ाया। अभी कुछ दोस्तों ने बताया कि राजस्थान और मध्य प्रदेश की सीमा पर जो चार-पांच आदिवासी जिले हैं, वहां मामा बालेश्वर दयाल की डेढ़ सौ मूर्तियां लगी हैं, स्वत:स्फूर्त।

आदिवासियों को वहां आज भी मामा कहा जाता है और बालेश्वर दीक्षित इटावा के थे। वे इतने लीन हो गए उनकी सेवा में कि उनका नाम ही मामा पड़ गया, जो आदिवासियों के लिए हिकारत भरा शब्द है।

गांधी जी रचनात्मक कार्यक्रम के 18 मुद्दों में आर्थिक समानता को अहिंसक भारत की रचना की मूल कुंजी बताते हैं। कहा है कि आर्थिक विषमता का लाभ लेने वाले दुरुपयोग बंद नहीं करेंगे तो भारी विस्फोट होगा।

आज आदिवासी क्या सोचता है। किशन जी ने लिखा कि आदिवासी को लगता है कि यह गलत हो गया कि हम हिन्दू समाज में नहीं गए। हम न घर के हैं, न घाट के हैं। इसाई भी नहीं बने, हिन्दू भी नहीं रहे, हाशिए पर खड़े हैं, जमीन जा रही है, जंगल जा रहा है, नदी जा रही है। किशन पटनायक ने तो यहां तक लिखा कि उनकी समस्याओं का समाधान उनके अलग राज्य बनाने से नहीं होगा, उन्होंने उदाहरण में लिखा कि झारखंड का मुख्यमंत्री तो आदिवासी हैं, लेकिन उसने झारखंड की नदी ही बेच दी। जैसे कल तक भारत का सिख खालिस्तानी कहलाया जाता था। आज हिन्दुस्तान के औसत आदिवासी को माओवादी या माओवादी समर्थक माना जाता है। और उधर कोई नहीं जा रहा, जो उसका आर्थिक पक्ष है, वो और दिलचस्प है।

बहुत से लोग समझते हैं कि गांधी जी आर्थिक विषमता की अनदेखी करने की बात करते थे क्योंकि वे ट्रस्टीशिप के समर्थक थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने जो 18 मुद्दे बनाए उसमें एक मुद्दे का नाम ही लिखा है-आर्थिक समानता। और ये लिखा है कि यही अहिंसक भारत की रचना की मूल कुंजी है। दूसरी बात जो लिखी- वह और भी चौंकाने वाली है। हमारे माओवादी मित्रों को पढ़ना चाहिए।

उन्होंने लिखा कि अगर आर्थिक विषमता का लाभ उठाने वाले स्वेच्छा से अपने पद और अधिकारों का दुरुपयोग बंद नहीं करेंगे, तो बहुत जल्दी ऐसा विस्फोट होगा कि पूरी समाज व्यवस्था चिथड़ा-चिथड़ा हो जाएगी। इसलिए अगर किशन पटनायक कहते हैं या लोहिया, जयप्रकाश ने कहा कि हमारा मूल गांधी में है तो गांधी के राष्ट्र निर्माण के आर्थिक मोर्चे की कहानी पढ़ना बहुत जरूरी है। ■

सरकार को अपनी हिंसा पर भी काबू रखना सीखना होगा

जयप्रकाश नारायण



यदि सरकार चाहती है कि समाज में हिंसा न हो, तो कुछ बातें उसे खासतौर पर अपने ध्यान में रखनी पड़ेंगी। सबसे पहले तो उसे विविध प्रकार की हिंसा के बीच के भेद को पहचानने का अभ्यास करना होगा। एक है, बिलकुल व्यवस्थित और योजनापूर्वक की गई हिंसा। उदाहरण के लिए, बिहार-आंदोलन के दिनों में पटना के 'सर्चलाइट' समाचार पत्र के भवन पर किए गए हमले का अनुभव। दूसरे प्रकार की हिंसा वह है, जो गुंडों और अन्य असामाजिक तत्वों द्वारा की जाती है। और तीसरे प्रकार की हिंसा वह छोटी-छोटी हिंसा है, जिसमें लोग पत्थरबाजी करते हैं या छिटपुट ढंग से बसों आदि को जला डालते हैं। ऐसी हिंसा या तो गुस्से की वजह से की जाती है, या बदला लेने के इरादे से की जाती है, या केवल बिना सोचे-समझे झगड़ालू मिजाज के कारण भी की जाती है। लेकिन लगता नहीं कि सरकारें सोच-समझकर इन सब हिंसाओं के बीच ऐसा कोई विवेक कर पाती हों। इसका नतीजा यह निकलता है कि जो असल गुनहगार होते हैं वे तो पकड़ में आते ही नहीं, और दूसरों को, यहां तक कि बिलकुल निर्दोष लोगों को भी सजा भुगतनी पड़ती है।

दूसरी बात सरकार को यह समझनी है कि कुछ परिस्थितियों में हिंसा लोगों के दिलों में ही भड़क उठती है। आम लोगों की यातनाएं दिन-ब-दिन बढ़ती जाती हैं। उनके कारण लोगों की नाराजी हद दरजे तक पहुंच जाती है, और कभी-कभी उसकी वजह से भी विस्फोट हो जाता है।

सरकार को एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि श्री रामुलु के अनशन के कारण जब से अलग आंध्र राज्य की स्थापना हुई है, तब से लेकर आज तक यह परंपरा चली आ रही है कि जनता की शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक कार्यवाहियों की तरफ तो सरकार बिलकुल ही ध्यान नहीं देती, फिर भले ही वह कार्यवाही कितनी ही शांतिपूर्ण और शुद्ध क्यों न हो! याद नहीं पड़ता कि कहीं किसी एकाध मामले में भी सरकारों ने कभी सहयोग का रास्ता अपनाया हो। ज्यादातर लोगों को उनकी अरजियों के जवाब ही नहीं दिए जाते। या फिर टालमटोल वाले या मुख्य प्रश्न को एक तरफ रखकर उड़ाऊ जवाब दे दिए जाते हैं! लेकिन जब सार्वजनिक संपत्ति को तोड़ा-फोड़ा या जलाया जाता है, या कोई तबाही बरपा की जाती है, तो सरकार फौरन ही ध्यान देती है और झटपट कोई-न-कोई कार्रवाई शुरू कर देती है। कई सम्माननीय नागरिकों ने भी मुझसे कहा है कि सरकार तो हिंसा के बिना कभी सुनती ही नहीं। मुझे शक है कि जब तक सरकार का यह तौर-तरीका सुधरता नहीं है, तब तक हिंसा को रोका जा सकेगा या नहीं।

इसी के साथ सरकार को खुद अपनी हिंसा पर भी काबू रखना सीखना होगा। इस विषय में अब तक की परंपरा यह रही है कि जैसे ही थोड़ी पत्थरबाजी हुई और किसी पुलिस अधिकारी को पत्थर की चोट लगी कि बंदूक से गोलियां छूटने लगती हैं। इसकी वजह से कई लोग घायल हो जाते हैं और आसपास खड़े हुओं में से भी कुछ लोग मर जाते हैं। ऐसा अकसर ही होता है। समाज ने, सरकार के हाथ में जो दंड-शक्ति सौंपी है, उसका ऐसा अविचारपूर्ण उपयोग बंद होना ही चाहिए। इस संदर्भ में सीमा सुरक्षा दल के मुखिया श्री रुस्तमजी ने आंतरिक कानून और व्यवस्था की रक्षा के लिए कम विघातक साधनों का उपयोग करने की जो सिफारिश की है, सरकार को उस पर तुरंत ही ध्यान देना चाहिए। रुस्तमजी ने कहा कि रायफलें तो लड़ाई लड़ने के लिए हैं, उनका उपयोग देश की जनता पर नहीं किया जाना चाहिए। आंतरिक सुरक्षा के लिए नई किस्म की ऐसी गोलियों की जरूरत है, जो इंसान की जान न लें, उसे सिर्फ घायल करें।

साथ ही, सरकारों को अपना घर भी व्यवस्थित करना चाहिए। घूसखोर, रिश्वतखोर और भ्रष्टाचारी मंत्रियों और अधिकारियों को हटा देना चाहिए, प्रशासनिक व्यवस्था में आवश्यक सुधार करने चाहिए। कालाबाजारियों, मुनाफाखोरों और संग्रहखोरों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए, भूख से बिलबिलाने वाले गरीबों को राहत पहुंचाने के उपाय तुरंत किए जाने चाहिए। हर किसी की बात को शांतिपूर्वक और सहानुभूति-पूर्वक सुनकर उसे किसी-न-किसी रूप में संतुष्ट करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए।

('मेरी विचार यात्रा' से)



गांधी और स्त्रियां

नारायण देसाई

भारत में स्त्रियों की गरिमा बहाल करने में गांधी का महान योगदान है। यह उन्होंने राजनीति के सार्वजनिक क्षेत्र में ही नहीं किया। यह बात आश्रम के सामुदायिक जीवन पर भी लागू होती थी, जहां हर गतिविधि में स्त्रियों की पुरुषों के समान भागीदारी रहती थी।

दांडी मार्च के लिए, गांधी ने तय किया था कि कूच करने वालों में कौन-कौन होंगे, यह वे खुद चुनेंगे। कुछ दिन की सतर्क छानबीन के बाद उन्होंने 78 साथी चुने। बाद में एक और साथी को उस जत्थे में शामिल कर लिया। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही थी जिसने अपने लाहौर अधिवेशन में प्रस्ताव पारित कर गांधी को इसके लिए अधिकृत किया था कि सविनय अवज्ञा आंदोलन के तरीके और साधन क्या होंगे इस बारे में अंतिम निर्णय उनका होगा। लेकिन जब पहले जत्थे के लिए सत्याग्रहियों को चुनने का वक्त आया, गांधी ने कांग्रेस के एक भी सक्रिय सदस्य को उसमें शामिल नहीं किया। योजना यह थी कि दूसरे दौर में बड़े पैमाने पर होने वाला सत्याग्रह कांग्रेस के सदस्यों और समर्थकों के लिए खुला होगा। दांडी कूच के लिए चुने गए सभी 79 सत्याग्रही साबरमती आश्रम के अंतेवासी थे। वे भिन्न-भिन्न जातियों, भिन्न-भिन्न धर्मों से ताल्लुक रखते थे; उनके बीच भाषागत भिन्नताएं भी थीं। पर इतनी भिन्नताओं को समाहित किए होने के बावजूद वे भारत की आधी आबादी का ही प्रतिनिधित्व करते थे। मैंने कहा आधी आबादी, क्योंकि 79 सत्याग्रहियों के उस जत्थे में एक भी महिला नहीं थी।

स्वाभाविक ही, इससे आश्रम में रहने वाली स्त्रियां आहत हुईं। इस बाबत एक प्रतिनिधिमंडल गांधी से मिलने गया। मेरी मां उस प्रतिनिधिमंडल में शामिल थीं।

'बापू, क्या आपने हममें से एक भी महिला को इस काबिल नहीं समझा कि वह दांडी कूच में शामिल हो सके?' उन स्त्रियों ने पूछा। गांधी तनिक मुस्कराए। फिर बोले, 'मैं जानता था कि यह सवाल उठेगा। वास्तव में, मुझे आश्चर्य तब होता, अगर यह सवाल न उठता। लेकिन सत्याग्रहियों का चयन मैंने खूब सोच-समझ कर किया है। क्योंकि मैं अंगरेजों के चरित्र के बारे में जानता हूं। वे शूर हैं। अगर हमारे पहले जत्थे में स्त्रियां होंगी, तो वे हम पर हमला नहीं करेंगे। वे पहले वार करें, मैं उन्हें इसका मौका देना चाहता था। लेकिन सिर्फ पुरुषों को चुनने के पीछे एक और वजह है। और मैं चाहता हूं कि आप लोग इसका महत्व समझें। मेरे साथ कुछ दिनों तक कुछ मील पैदल चलना काफी आसान काम है। आप लोगों का कहीं अधिक गर्मजोशी से स्वागत किया जाएगा, जैसा कि होता आया है। मैं आप महिलाओं

को मेरे साथ सिर्फ पैदल कूच करने से कहीं ज्यादा कठिन काम सौंपना चाहता हूं। मेरी पक्की राय है कि पुरुषों के मुकाबले स्त्रियां अहिंसा की ज्यादा बेहतर सिपाही हो सकती हैं। जब संघर्ष थोड़ा तीखा होगा, मैं आप लोगों को जरूर न्योता दूंगा। मैं आप लोगों को ऐसा काम दूंगा जो आप लोगों का सम्मान बढ़ाए!'

इसलिए, आश्रम की स्त्रियां, गांधी में आस्था रखते हुए, दांडी के समुद्र तट पर उनके पहुंचने के कुछ दिन बाद तक धैर्यपूर्वक इंतजार करती रहीं। जब गांधी की गिरफ्तारी नहीं हुई, जैसी कि अपेक्षा थी, तो उन्होंने एलान किया कि ''अब भारत की महिलाओं को आंदोलन में शामिल होने का न्योता देने का वक्त आ गया है। महिलाएं गांवों में जाएं और शराब की दुकानों पर या विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना दें।''

जैसा कि गांधी ने वादा किया था, यह पुरुषों को दिए गए काम से ज्यादा कठिन साबित हुआ। इसके बहुतेरे उदाहरण थे। मैं आश्रम के बृहत्तर परिवार से एक उदाहरण देना चाहूंगा, जो कि मुझे बहुत प्रिय है। मेरे पिताजी और नरहरि पारीख घनिष्ठ मित्र थे। वे गांधी के पास रहने के लिए आए, उसके पहले से एक दूसरे को जानते थे। मेरी मां और मणिबेन (नरहरि पारीख की पत्नी) भी पक्की सहेलियां थीं। धारासणा के नमक डिपो से नमक उठाने का काम जिस जत्थे को दिया गया था, नरहरि पारीख को उस जत्थे का नेता चुना गया, जबकि मणिबेन साबरमती आश्रम के निकट धरने की टीम की अगुआई करने के लिए चुनी गई थीं। वे साबरमती गांव के पास शराब की दुकान पर धरना दे रही थीं। नरहरिभाई को धारासणा में बुरी तरह तब तक पीटा गया था, जब तक वे बेहोश होकर गिर नहीं गए। उनके बेहोश होने की खबर एक अफवाह के रूप में मणिबेन तक पहुंची। एक कार्यकर्ता ने शराब की दुकान के सामने धरने पर बैठी मणिबेन को जाकर बताया: ''मुझे बहुत अफसोस है मणिबेन, आपके लिए बहुत दुखद समाचार है। नरहरिभाई सार्जेन्टों के हमले में मारे गए।'' एक औरत की कल्पना कीजिए, जिसने अभी-अभी अपने पति की मृत्यु का समाचार सुना हो! जो एकमात्र साथी मणिबेन के पास थी वह थी नौ साल की उनकी बेटी, वनमाला। स्तब्ध कर देने वाली खबर मिलने के बाद भी, मणिबेन विचलित न होकर, अपने स्थान पर जस की तस डटी रहीं। 'मैं बापू के द्वारा सौंपी गई ड्यूटी कर रही हूं। मैं इस जगह को नहीं छोड़ सकती। पर हमें सच्चाई का पता लगाना होगा।' उन्होंने सही सूचना पाने के लिए नन्हीं वनू को आश्रम भेजा, और दृढ़ बनी रहीं, हालांकि बेचैनी के साथ, शराब की दुकान के सामने, जब तक कि मेरी मां वनमाला के साथ वहां नहीं आ गईं, सही समाचार देने के लिए, कि नरहरि भाई हमले में बच गए हैं। मेरी मां यानी अपनी प्यारी सहेली को देखने के बाद ही मणिबेन के आंसुओं का बांध बह चला, जिसे तब तक उन्होंने बड़ी दृढ़ता से रोक रखा था। कहना न होगा कि मणिबेन ने अपनी ड्यूटी का समय पूरा होने के बाद ही वह जगह छोड़ी। यह अहिंसक शक्ति का एक नमूना था जिसकी उम्मीद गांधी खासकर स्त्रियों से करते थे, जब उन्होंने कहा था, ''आत्मोत्सर्ग के साहस के लिए स्त्री हमेशा पुरुष से श्रेष्ठ रही है, जैसा कि मैं मानता हूं, हृदयहीन साहस के लिए पुरुष हमेशा स्त्री से आगे रहा है।''

स्त्रियों की मुक्ति का गांधी का तरीका उन्हें आजादी की लड़ाई में पुरुषों के बराबर भागीदार बनाने का था। गांधी का मानना था कि देश की गरिमा बहाल करने में शामिल होने से स्वाभाविक ही स्त्रियों की गरिमा भी बहाल होगी।

स्त्रियों को अहिंसक संघर्ष में जोड़ने की गांधी की रणनीति इसी विश्वास पर खड़ी हुई थी और यह रणनीति भारत में जागरूकता की लहर पैदा करने में अपूर्व कारक सिद्ध हुई। भारत की स्त्रियों की मुक्ति का गांधी का तरीका उन्हें आजादी की लड़ाई में पुरुषों के बराबर भागीदार बनाने का था। गांधी का मानना था कि देश की गरिमा बहाल करने की प्रक्रिया में शामिल होने से स्वाभाविक ही स्त्रियों की अपनी गरिमा भी बहाल होगी।

आजादी के अहिंसक आंदोलन ने तीन बार महा-लहर पैदा की, जिन्होंने जन-जन को आलोड़ित किया। 1919-21 के असहयोग आंदोलन में वकील और अन्य बुद्धिजीवी भी शामिल हुए। इतिहास में पहली बार शिक्षित वर्ग ने जेल जाने का भय त्याग कर खुद गिरफ्तारियां दीं। जेल जाना अब डराने वाली घटना नहीं रह गई थी। दूसरी महा-लहर थी, 1930-32 का सविनय अवज्ञा आंदोलन, जिसने हजारों महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में ला दिया। 1942 में हुए 'भारत छोड़ो' आंदोलन में युवा, किशोर और यहां कि कुछ बच्चे भी कूद पड़े। पहली लहर ने जेल का, दूसरी लहर ने पिटाई और उत्पीड़न का और तीसरी लहर ने पुलिस की गोली और मौत का भय दूर कर दिया। स्त्रियों की सबसे बड़े पैमाने पर भागीदारी दूसरी लहर में हुई, क्योंकि यही लहर थी जिसने स्त्रियों में गजब की जागरूकता पैदा की।

आश्रम की कुछ स्त्रियां गुजरात के खेड़ा जिले के बोरसाद में एक जुलूस में शामिल थीं। साबरमती आश्रम की एक वरिष्ठ सदस्य गंगाबेन वैद्य जुलूस का नेतृत्व कर रही थीं। यह उन सैकड़ों जुलूसों में से एक था, जो चार से अधिक व्यक्तियों को इकट्ठा होने से रोकने वाले कानून की नम्रतापूर्वक अवज्ञा करने के लिए आयोजित किए गए थे। लाठियों से लैस पुलिस की कतार जुलूस पर झपट पड़ने और स्त्रियों के हाथ से तिरंगा झंडा छीन लेने के लिए इंतजार कर रही थी। पुलिस ने एलान किया कि अगर कोई तय की गई हद से आगे बढ़ेगा, तो उसकी खैर नहीं। गंगाबेन ने जैसे ही यह घोषणा सुनी, चेहरे पर भद्र मुस्कान के साथ आगे बढ़ीं। गंगाबेन के सिर पर फौरन पुलिस की लाठियां बरसीं, उनके सिर से खून बहने लगा और खादी की उनकी सफेद साड़ी खून से सन गई। लेकिन उन्होंने पीछे हटने या रुक जाने के बजाय दूसरा कदम बढ़ाया, और पुलिस ने उन पर फिर लाठी से वार किया। जब तक वे खड़ी रह सकीं, तब तक यह क्रम चला। लेकिन बेदम होकर उनके गिर पड़ने से पहले ही जुलूस में उनके पीछे चल रही औरत ने तिरंगा थाम लिया था

150वीं जयंती पर विशेष

और खुद लाठी का वार झेलने के लिए आगे आ गईं।

धरना देने के अभियान में कस्तूरबा भी आगे-आगे थीं। वे दक्षिण अफ्रीका में भी और भारत में भी कई बार गिरफ्तार हुईं।

मेरी मां समेत सत्ताईस प्रमुख गुजराती स्त्रियों ने वाइसराय को एक चिट्ठी भेजी थी। उस चिट्ठी में अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित पंक्तियां भी थीं-

'हम इस नतीजे पर पहुंची हैं कि जो महान राष्ट्रीय परिवर्तन घटित हो रहा है उससे हम खुद को अलग नहीं रख सकतीं। नमक कानून के संदर्भ में सविनय अवज्ञा अभियान से हमारी पूरी सहानुभूति है... लेकिन स्त्रियां होने के नाते हम महसूस करती हैं कि हमारी गतिविधि के लिए एक अतिरिक्त और विशेष क्षेत्र है। हम गांधीजी की इस बात को बड़ी शिद्दत से मानती हैं कि शराब और मादक पदार्थों पर पाबंदी लगवाने और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के अभियान के लिए स्त्रियां कहीं ज्यादा उपयुक्त हैं।' कहना न होगा कि इस अभियान में शामिल होने के कारण जो सैकड़ों स्त्रियां गिरफ्तार हुईं और जेल भेजी गईं उनमें मेरी मां भी शामिल थीं।

जो महिला वालंटियर खेड़ा में गिरफ्तार हुईं उनमें काकी लीलावती सबसे छोटी थीं। वह बाकियों से अधिक सुंदर भी थीं। जब वह पुलिस हिरासत में ही थीं, और जेल भेजे जाने की सजा नहीं सुनाई गई थी, उन्हें एक पुलिस अफसर ने तलब किया, जो कि अपने बर्बर व्यवहार के लिए जाना जाता था। कैदी लीलावती को आदेश लेकर आए कांस्टेबल के साथ जाना था। उस शाम की उनकी बताई हुई कहानी मुझे याद है। 'पहले तो मैं बुरी तरह भयभीत थी। लेकिन तब मैंने अपने आप से कहा, बापू हमसे बलिदान के अधिक साहस की उम्मीद रखते हैं। मुझे इसे सही साबित करना होगा। अफसर के कमरे की तरफ जाते हुए मैं मन ही मन प्रार्थना कर रही थी। जब मैं वहां पहुंची, मैंने अपने भीतर अद्‌भुत शक्ति का संचार महसूस किया। शायद यही वजह रही होगी कि उस अफसर ने मेरे साथ बदसलूकी नहीं की। उसने मुझसे कुछ सवाल पूछे और कांस्टेबल से कहा कि वह मुझे वापस ले जाए।'

गांधी की दृष्टि में जेल जाना अपने को उत्सर्ग करने की पुरुषों और स्त्रियों की साझी कार्रवाई थी। जनवरी 1922 में उन्होंने लिखा: 'क्या मुझे स्त्रियों को जेल जाने की सलाह देनी चाहिए? मुझे लगता है कि मैं इससे उलट सलाह नहीं दे सकता। अगर मैं उन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता, तो इससे यही जाहिर होगा कि उनमें मेरा कितना भरोसा है। एक यज्ञ स्त्रियों की सहभागिता के बिना पूरा नहीं हो सकता।'

भारत में स्त्रियों की गरिमा बहाल करने में गांधी का महान योगदान है। यह उन्होंने राजनीति के सार्वजनिक क्षेत्र में ही नहीं किया। यह बात आश्रम के सामुदायिक जीवन पर भी लागू होती थी, जहां हर

अपनी पत्नी के प्रति गांधी के रवैये को लेकर एक सवाल अकसर उठता है। एक उदाहरण जो दोषदर्शी लोग प्रायः देते हैं उसका जिक्र गांधी ने खुद अपनी आत्मकथा में किया है। लेकिन गांधी पछताते हैं और माफी मांगते हैं।

गतिविधि में स्त्रियों की पुरुषों के समान भागीदारी रहती थी। आश्रम की एक जिम्मेदारी ऐसी थी, जिसे स्वीकार करने में सब हिचकते थे। वह जिम्मेदारी थी आश्रम के भंडारगृह की, जिसमें छोटे-छोटे ढेर सारे हिसाब रखने पड़ते थे और तरह-तरह के मिजाज वाले लोगों से साबका पड़ता था। यह बात गांधी के ध्यान में लाई गई: ''बापू, कोई भी भंडारगृह की जिम्मेदारी उठाने के लिए तैयार नहीं है।''

गांधी को उपाय सूझा, ''अगर यह बात है, तो क्यों न सारी जिम्मेदारी महिलाओं को दे दी जाए। मुझे पक्का भरोसा है कि यह काम जो पुरुषों के संभाले नहीं संभल रहा है, उसे वे अच्छी तरह संभाल लेंगी।''

मेरी मां यह सुनकर प्रफुल्लित थीं और उन्हें भी गर्व का अनुभव हुआ था, जब महीने के अंत में आश्रम की स्त्रियों ने यह साबित कर दिया कि हिसाब-किताब में बिना किसी कठिनाई के वे यह जिम्मेदारी संभाल सकती हैं।

अपनी पत्नी के प्रति गांधी के रवैये को लेकर एक सवाल अकसर उठता है। एक उदाहरण जो दोषदर्शी लोग प्रायः देते हैं उसका जिक्र गांधी ने खुद अपनी आत्मकथा में किया है। गांधी ने उसमें कबूल किया है कि एक बार जब दक्षिण अफ्रीका में जाति से अछूत माने जाने वाले उनके एक मुहर्रिर का मूत्र-पात्र साफ करने के लिए कस्तूरबा तैयार नहीं थीं, तो उन्होंने कस्तूरबा को जबरदस्ती घर से निकालने की कोशिश की थी। गांधी ने खुद इस प्रसंग का जो जीवंत वर्णन किया है वह आलोचकों के हाथों उन्हें पीटने का औजार बन गया है। गांधी की आत्मकथा की पारदर्शिता कभी-कभी उनके खिलाफ इस्तेमाल होती है। इस प्रसंग को खुद गांधी ने नम्रता, संजीदगी और ग्लानि के भाव-बोध के साथ चित्रित करके अमर कर दिया है। लेकिन इस प्रसंग में भी कोई यह नजरअंदाज नहीं कर सकता कि आखिर में कस्तूरबा की झिड़की के बाद गांधी पछताते हैं और शरमिंदा होकर माफी मांगते हैं। यह गांधी के भीतर का समाज सुधारक था जो सुधार के अपने उत्साह में अपनी पत्नी से शरीक होने की उम्मीद रखता था, और उसी सुधारक ने वैसा कदम उठाया था। लेकिन उस नाजुक घड़ी में भी कस्तूरबा को यह स्वतंत्रता हासिल थी कि वे अपने पति को फटकार लगा सकीं। और पति के मिशनरी उत्साह को पत्नी की पीड़ा-भरी फटकार के आगे झुकना पड़ा।

अपनी पत्नी के प्रति गांधी के व्यवहार पर विचार करते हुए किसी को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि गांधी खुद में निरंतर सुधार लाने के लिए जिस तरह उत्साही रहते थे उसी तरह प्रियजनों की बाबत भी। मोहन और कस्तूरी का बचपन में ही विवाह हो गया था। हालांकि बचपन में पति होने को लेकर मोहन के अपने खयालात थे, पर कस्तूरी ने, जो कि कुछ महीने बड़ी थीं, कभी भी कोई ऐसा आदेश नहीं माना जिसे वह अन्यायपूर्ण समझती थीं। गांधी उच्चशिक्षित थे और कस्तूरबा अर्ध-साक्षर। गांधी की शख्सियत

का निरंतर विकास हो रहा था और ऐसे शख्स की पत्नी होना कस्तूरबा के लिए आसान नहीं रहा होगा। लेकिन उन्होंने जीवन-भर गांधी के प्रत्येक रूपांतरण में साथ दिया। यही नहीं, गांधी के साथ खुद कस्तूरबा की शख्सियत भी निखरती रही। एक साधारण गृहणी एक दिन न केवल भारत के सबसे लोकप्रिय नेता की पत्नी थी, बल्कि वह खुद भी स्वतंत्र रूप से नेता की हैसियत पा चुकी थी। ये दोनों बातें इसलिए संभव हो सकीं, क्योंकि एक तो, कस्तूरबा ने स्वयं को अपनी शख्सियत के विकास के अनुकूल बनाया, और दूसरे, गांधी अपने विचार और कार्यकलाप उनसे निरंतर साझा करते रहते थे। गांधी बचपन में अधिकार जताने वाले पति से कस्तूरबा के प्रशंसक में बदल गए।

पुरुषों और स्त्रियों के प्रति समान आदर का गांधी का व्यवहार एक मूलभूत दर्शन पर आधारित था, जिसने उन्हें सिखाया कि पुरुष और स्त्री शारीरिक तौर भले भिन्न हों, पर उनमें एक ही आत्मा है। उन्होंने 1932 में मेरी काकी लीलावती को एक पत्र में लिखा था: ''ईश्वर के सामने पुरुष और स्त्री जैसे भेद का कोई अर्थ नहीं है। जो आत्मा पुरुष के शरीर में निवास करती है वही स्त्री के शरीर में भी।'' वैदिक दर्शन कहता है कि आत्मा जाति, लिंग या देश जैसे विभेदों से अप्रभावित रहती है। इस मूलभूत मान्यता के कारण, और भी पहले, 1918 में बंबई में स्त्रियों की एक सभा को संबोधित करते हुए गांधी ने कहा था: ''स्त्री समान मानसिक क्षमताओं के साथ पुरुष की साथी है। पुरुष की छोटी से छोटी गतिविधि में शामिल होने का उसे अधिकार है और वह पुरुष के साथ समान स्वतंत्रता और समान अधिकार की पात्र है।''

गांधी मानते थे कि हर मनुष्य में आत्मा है जो लिंग-भेद से परे है। वे यह भी मानते थे कि हर व्यक्ति में कुछ गुण, पुरुष और स्त्री, दोनों के होते हैं। संपूर्ण व्यक्ति बनने के लिए पुरुष को स्त्री के गुणों का और स्त्री को पुरुष के गुणों का विकास करना चाहिए। उनके संपर्क में आई सैकड़ों स्त्रियों ने, जिन्हें उनसे तनिक भी भय नहीं लगता था, वैसा ही किया, और गांधी जीवन-भर स्वयं में स्त्री-गुणों के विकास की कोशिश करते रहे। वे स्त्रियों को बहादुर बनने के लिए प्रेरित करते थे। चूंकि गांधी का व्यवहार मनुष्य के नाते स्त्री को पूरी गरिमा प्रदान करने का था, बहुत-सी महिलाएं निजी समस्याओं की बाबत या समाज में स्त्री की समस्याओं को लेकर उनका मार्गदर्शन चाहती थीं। इन सवालों पर गांधी का जवाब उनकी दुर्बलताओं को दूर करके उन्हें स्वतंत्र और बहादुर बनाने के मकसद पर आधारित होता था। ''अपनी सनकों और कामनाओं की गुलामी न करें, न ही पुरुषों के गुलाम बनें'', उनकी सलाह होती, ''खुद को सजाने-संवारने से मना कर दें और इत्र व सुगंधि के चक्कर में न पड़ें। अगर आप चाहती हैं कि

संपूर्ण व्यक्ति बनने के लिए पुरुष को स्त्री के गुणों का और स्त्री को पुरुष के गुणों का विकास करना चाहिए। उनके संपर्क में आई सैकड़ों स्त्रियों ने, जिन्हें उनसे तनिक भी भय नहीं लगता था, वैसा ही किया, और गांधी जीवन-भर स्वयं में स्त्री-गुणों के विकास की कोशिश करते रहे।

आपसे सुगंधि आए, तो यह आपके हृदय से आनी चाहिए, और तब आप पुरुष को नहीं, पूरी मानवता को आकर्षित करेंगी। यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरुष, स्त्री से जनमा है, और स्त्री की मांस-मज्जा से निर्मित हुआ है। स्वयं के प्रति सचेत हों और अपना संदेश फिर से फैलाएं।''

गांधी से बलात्कार को लेकर बहुत बार सवाल पूछे गए थे। समाज की आम धारणा से विपरीत गांधी का कहना था कि बलात्कार-पीड़िता ने कोई पाप नहीं किया है। जोर-जबरदस्ती से किए गए कृत्य यानी बलात्कार से आत्मा की पवित्रता दूषित नहीं होती। हालांकि स्त्रियों को उनकी सलाह होती थी कि उन्हें हर हाल में अपनी रक्षा करनी चाहिए, आत्महत्या करके भी, अगर कोई कर सके। लेकिन गांधी ने अनिच्छुक पत्नी को आक्रामक पति द्वारा हमबिस्तर होने के लिए विवश करने के बारे में भी अपने विचार रखे। उन्होंने ऐसी स्त्रियों को सलाह दी कि पति से असहयोग का तरीका अख्तियार करना चाहिए और यदि आवश्यक जान पड़े तो अलग रहने की हद तक जाने में भी हिचकिचाना नहीं चाहिए। मुझे एक ऐसे मामले के बारे में मालूम है, जब गांधी ने एक औरत को सलाह दी थी कि अगर उसके पति को उसकी सेहत की परवाह नहीं है, तो उसे गर्भनिरोधक उपाय अपनाना चाहिए, हालांकि वे गर्भनिरोध के कृत्रिम उपायों के खिलाफ थे।

गांधी हालांकि एक आदर्शवादी थे, पर उन्होंने यथार्थ से अपनी आंख कभी नहीं फेरी। 'हरिजन' के 1 मार्च, 1942 के अंक से नीचे दिया गया उद्धरण पाठकों को उनके व्यावहारिक आदर्शवाद की कुछ झलक दे सकेगा:

''यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि एक निर्भीक स्त्री, जो जानती है कि उसकी शुचिता उसका सबसे बड़ा कवच है, कभी भी बेइज्जत नहीं की जा सकती। कोई कितना भी नृशंस पुरुष हो, वह उसकी धधकती पवित्रता की लपटों के आगे सिर झुकाएगा...जब एक औरत पर हमला होता है, तो हिंसा या अहिंसा पर विचार करने के लिए उसके पास वक्त नहीं होता। उसकी पहली प्राथमिकता आत्म-रक्षा है। उसे पूरी छूट है कि अपनी इज्जत बचाने के लिए उसे जो भी तरीका या साधन सूझे, उसका इस्तेमाल करे। ईश्वर ने उसे नाखून और दांत दिए हैं। पूरी ताकत से उनका जरूर इस्तेमाल करना चाहिए, और अगर जरूरी लगे, तो इस प्रयास में जान भी दे देनी चाहिए। जिस पुरुष या स्त्री ने मृत्यु से पार पा लिया है वह न केवल अपनी रक्षा करने में समर्थ होगा या होगी, बल्कि वे अपनी जान कुरबान कर दूसरों की रक्षा करने में भी समर्थ होंगे।''

(अंग्रेजी से अनुवाद : राजेंद्र राजन) ■

मंदी है, मगर मोदी के लिए चंगा है

इस साल लगातार दूसरी तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट भी भयावह मंदी का संकेत दे रहा है मगर मोदी सरकार के कान पर जूं नहीं रेंग रहा है। दरअसल वह अपने प्रिय उद्योग समूहों की ही तिमारदारी में जुटा है

अरविन्द मोहन

इस साल दूसरी तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) वृद्धि दर सरकारी आंकड़ों के मुताबिक ही पहली तिमाही से आधा फीसदी घटकर 4.5 फीसदी पर आ गई। लेकिन वित्त मंत्री निर्मला सीतारमन अभी भी मंदी न मानने की जिद पर अड़ी हुई है, मानो उनके ना कह देने भर से आर्थिक हालात सुधरने लगेंगे। हालांकि कुछ समय पहले भवन निर्माण क्षेत्र के लिए बड़े पैकेज की घोषणा के साथ ही खाद्य तथा आपूर्ति मंत्री रामविलास पासवान द्वारा चार देशों से प्याज आयात करने की घोषणा वैसे तो देर से हुए फैसले हैं पर कोई चाहे तो इनकी व्याख्या यह भी कर सकता है कि अगर आर्थिक मंदी से जुड़ी खबरें भरभराकर आ रही हैं तो सरकार भी दम साधे नहीं बैठी है।

दूसरी ओर आर्थिक स्थिति खराब होने, अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा रेटिंग गिरने और अब खेतिहर मजदूरों की आत्महत्या की संख्या किसानों की आत्महत्या के आंकड़ों से आगे निकलने जैसी डरावनी सूचनाएं रोज आ रही हैं। उधर, सरकार के मुखिया ने चीन और आसियान देशों के साथ बन रहे नए क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग संगठन की सदस्यता लेने से इनकार करने के साथ नया विदेश दौरा शुरू कर दिया था। उन्होंने भारत के आर्थिक महाशक्ति का अपना दावा भुलाकर यह तर्क दिया कि हम चीन ही नहीं, इन छोटे दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों से अभी मुकाबला नहीं कर सकते और इनके साथ होने वाला व्यापार भारत के लिए बड़े घाटे का सौदा बन गया है। उल्लेखनीय है कि पहली बार भारत का विदेश व्यापार 2000 में पश्चिम की तुलना में पूरब से पिछड़ा था और भारत आसियान के साथ जुड़ने के लिए भाग-दौड़ कर रहा था। अब अवसर आया तो उसने खुद से मना कर दिया।

लेकिन इन कदमों को भारत की बदहाल आर्थिक स्थिति स्वीकार करने का प्रमाण भी माना जा सकता है क्योंकि अभी तक सरकार मंदी जैसी स्थिति न होने का दावा ही कर रही थी। सरकार की यह जिद क्यों है, यह समझना मुश्किल है क्योंकि वह इसके चलते टुकड़े-टुकड़े में जो फैसले ले रही है, वह आर्थिक मंदी दूर करने की जगह साधनों की बर्बादी ही साबित हो रही है। अभी बजट को पेश हुए छह महीने नहीं हुए और सरकार ने अमीरों पर कर से लेकर शेयर बाजार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के नाम पर हो रहे छल को रोकने के लिए जो कदम उठाए थे, वे सब उठा लिए गए हैं। चुनाव के पहले अंतरिम बजट की चर्चा तो छोड़ ही दें तब भी सरकार कई खेप में लाख करोड़ रु. से ज्यादा का राहत दे चुकी है, जिसका बड़ा हिस्सा सीधे अमीरों की जेब में गया है या बड़ी कंपनियों को दिया गया है। विकास दर गिर रही है, पांच साल से विदेश व्यापार जस का तस पड़ा है. निवेश, आर्थिक उत्पादन (खासकर करखनिया उत्पादन) गिर रहा है, संरचना क्षेत्र खराब प्रदर्शन कर रहा है, रोजगार गिर रहा है, निवेश रिकार्ड गिरावट पर है और बिक्री के आंकड़े उद्यमियों का हौसला गिरा रहे हैं जिससे वे 'महाबली' सरकार की नाराजगी का खतरा उठाकर भी अपने दुख का सार्वजनिक इजहार करने लगे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की लगभग सभी कंपनियों की हालत खराब है और बारी-बारी से सबके बिकने या पस्त होने की खबरें आ रही हैं। कथित नौरत्न कंपनियों के आर्डर भी विदेशी या अपनी पसंद की निजी कंपनियों को देने से उनकी भी हालत खराब होने की खबरें आ रही हैं। बैंकों का जो एनपीए पिछली सरकार ने चार लाख करोड़ पर छोड़ा था वह आज बारह लाख करोड़ रु. पर आ गया है। नोटबंदी और जीएसटी ने जो कमर तोड़ी थी, वह सीधी होने का नाम नहीं ले रही है। हमारे पड़ोसी और अभी तक पिछड़े रहे बांग्लादेश, वियतनाम, श्रीलंका भी हमसे आगे हो गए हैं।

यही नहीं, मंदी को स्वीकार न करके भी सरकार जो कदम उठा रही है, वह मंदी से लड़ने की उल्टी दिशा है। कई बार लगता है कि यह समझ का फेर या गलती न होकर अपने प्रिय लोगों का खजाना भरने और बाकी सभी को भगवान भरोसे छोड़ने की सोची-समझी रणनीति है। आर्थिक सलाहकार सलाह न मांगे जाने से परेशान होकर भाग रहे हैं और सारे फैसले अनपढ़ लोग ले रहे हों तो इसे मात्र समझ का फेर मानना भी मूर्खता ही होगी।

कायदे से आम लोगों को काम और धन उपलब्ध कराके उनकी आर्थिक और श्रम की भागीदारी बढ़ाना ही मंदी भगाने का सही तरीका है। सरकार ने मनरेगा जैसी पुरानी योजना के खर्च में हल्की तेजी लाने के अलावा इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया है। इसी चलते ग्रामीण इलाके से मजदूरों के पलायन के साथ ही ग्रामीण उपभोग में तेज गिरावट की खबरें लगातार आ रही हैं। बेरोजगारी बढ़ने और खपत घटने का रिश्ता भी साफ है।

सरकार का खंडन-मंडन चुनाव के हिसाब से ठीक हो सकता है, लेकिन जब हर कहीं से आर्थिक विकास दर गिरते जाने की खबर आ रही है तो पचास लाख खरब डॉलर कीअर्थव्यवस्था लाने का दावा करने वाली सरकार को कुछ चीजें स्वीकार करके गंभीर कोशिश शुरू करनी चाहिए। वह गंभीरता सिरे से गायब है क्योंकि उसके साथ ही अपने कामों का हिसाब भी देना होगा। वादा तो अच्छे दिन लाने, एक करोड़ सालाना मकान और दो करोड़ लोगों को रोजगार देने के साथ पंद्रह-पंद्रह लाख रु. देने का था।

हो यह रहा है कि खुद प्रधानमंत्री अपने नौकरशाहों को सार्वजनिक रूप से फटकार लगा रहे हैं कि आपने मेरा पहला कार्यकाल नाश कर दिया, मैं दूसरे को नाश नहीं करने दूंगा। एक पुराने मुख्य आर्थिक सलाहकार ने तो इस साल के शुरुआत में सरकार के विकास दर के सात फीसदी के आंकड़े में करीब ढाई फीसदी का खोट माना था। यहां हम नए सूचकांक बनाने के समय करीब दो फीसदी का मार्जिन छोड़ने को लेकर हुई चर्चा को याद कर सकते हैं। दरअसल मोदी राज में सारे सरकारी आंकड़ों का संदिग्ध हो जाना ही सबसे बड़ी आर्थिक त्रासदी है। कहना न होगा कि नोटबंदी में आंकड़े छुपाने की खुल्लमखुल्ला कोशिश (जिसके नायक तब के वित्त सचिव और आज के रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकांत दास हैं) के पहले से ही यह अविश्सनीयता जकड़ने लगी थी। मोदी और उनकी मंडली को लगता है कि राजनैतिक लुकाछिपी और बालाकोट जैसी चालाकी से चुनाव जीतने के कारनामे हो सकते हैं तो आर्थिक आंकड़ों की लुकाछिपी क्यों नहीं हो सकती। पर इस चक्कर में हो यह रहा है कि अंगरेजी हुकूमत और फिर नेहरू राज में महालोबनीस जैसे लोगों द्वारा पूरी स्वतंत्रता के साथ सांख्यिकी का जो जबरदस्त जाल बनाया गया था, आज वह पूरी तरफ ध्वस्त हो गया है। और मोदी राज में सामने आए सारे आंकड़े दुनिया की नजर में अविश्वसनीय बन गए हैं।

नोटबंदी और जीएसटी ने जो कमर तोड़ी थी, वह सीधी होने का नाम नहीं ले रही है। हमारे पड़ोसी और अभी तक पिछड़े रहे बांग्लादेश, वियतनाम, श्रीलंका भी हमसे आगे हो गए हैं।

इसके बावजूद हर बार जितने आंकडे आ रहे हैं, वे अर्थव्यवस्था की बदहाली ही उजागर कर रहे हैं। छह संरचना क्षेत्र का प्रदर्शन तो दूरगामी नुकसान का सबसे पक्का संकेत देता है। अगर कोयले के उत्पादन में तीस फीसदी तक की गिरावट आ गई तो भगवान ही मालिक हैं। तुर्रा यह कि कोयला और कोकिंग कोल का आयात इधर तेजी से बढ़ा है। इसका मतलब है कि दुनिया का सबसे बड़ा कोयले का भंडार रखते हुए भी हम इसी मद में कंगाल बनते जा रहे हैं। कोलियरी का उत्पादन और रोजगार कितना गिर रहा होगा, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। औद्योगिक उत्पादन गिरा है। ग्रामीण क्षेत्र की मांग में आ रही गिरावट उद्योग-व्यापार से जुड़े हर किसी के चेहरे पर चिंता की लकीर खींच रहा है। त्यौहार का सीजन होने के बावजूद गाड़ियों की खपत घटी है। मुश्किल से अकेले मारुति की बिक्री इस महीने बढ़ी, लेकिन उसने भी अपना उत्पादन घटाया है। ट्रक, ट्रैक्टर ही नहीं मोटसाइकिलों तक की बिक्री में आई भारी गिरावट संकट के आगे और गहराने का संकेत दे रही है। पर सरकार सच्चाई को स्वीकारने और एकमुश्त पैकेज देकर सबको काम पर लगाने की मुहिम छेड़ने की जगह बेमतलब दांवपेंच और अपने 'लोगों' को लाभ देने में लगी है।

इन अपने लोगों की पहचान भी छुपी नहीं है। कुल कितने घरानों का कारोबार इस दौर में तेजी से बढ़ा है (वैसे पिछले शासन में भी ऐसे ही अधिकांश लोगों की संपत्ति तेजी से बढ़ी थी), उसका हिसाब छुपा नहीं है। अडाणी समूह सर्वाधिक प्रिय हो सकता है पर अंबानी बंधुओं की भी कम नहीं चल रही है। हर धंधे में पिटते जा रहे छोटे अंबानी को जिस तरह से राफेल सौदे में लाभ दिए गए, वह जगजाहिर है। बड़े अंबानी को फोन-इंटरनेट का सारा धंधा समर्पित किया जा रहा है। बीएसएनएल और एमटीएनएल का धंधा तो डूब ही गया है या डुबो दिया गया है, अब उसकी सारी बेशकीमती संपत्ति और इंटरनेट नेटवर्क को हड़पने की तैयारी है। सारी दूसरी निजी कंपनियां भी जियो के आगे दम तोड़ रही हैं और उनका घाटा डेढ़ लाख करोड़ रु. के आसपास पहुंच गया है। वोडाफोन प्रमुख ने काम छोड़ने तक की घोषणा कर दी थी तो उसके देसी पार्टनर बिड़ला भी हाथ खड़े कर चुका है। गिनती के लोग फल-फूल रहे हैं और मुश्किल यह है कि सरकार मंदी से लड़ने के नाम पर जो कदम उठा रही है वह ज्यादातर इन्हीं लोगों को लाभ दे रहा है। ■

150वीं गांधी जयंती और कश्मीरियों का सत्याग्रह

5 अगस्त को अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा समाप्त करने और उसे दो केंद्रशासित क्षेत्रों में बांटने के बाद कश्मीर में सरकारी नाकेबंदी और कश्मीर के लोगों के सत्याग्रह पर एक रपटः

नित्या रामकृष्णन (वरिष्ठ वकील) और नंदिनी सुन्दर (समाजशास्त्री)

हमने 5 से 9 अक्टूबर 2019 के बीच कश्मीर की यात्रा की। हमने तीन अलग-अलग क्षेत्रों के भिन्न-भिन्न तबकों के लोगों से संपर्क किया।

श्रीनगर

हमने श्रीनगर में पत्रकार केन्द्रों, न्यायालयों, बाजारों, और कुछ इलाकों का भ्रमण किया।

- टैक्सी ड्राइवर -2
- आटो-ड्राइवर- 3
- हाउसबोट मालिक- 2
- वकील- 2
- स्कूल और कालेज शिक्षक- 2 (प्रत्येक से 1)
- दुकानदार- 5
- फेरीवाले- 2
- होटल मालिक- 1
- वेटर- 2
- पत्रकार- 6
- प्रशासनिक अधिकारी- 1
- पुलिस द्वारा उठाए गए नाबालिकों के परिवार-2 परिवार (लगभग 10 लोगों से)
- कुल-लगभग 38

शोपियां/पुलवामा

- हमने 4 गावों और शोपियां की फल मंडी का भी भ्रमण किया।
- तीर्थ गांव, पुलवामा: 3-4 व्यक्तियों से (प्रताड़ितों समेत)
- कक्षा 11 की एक छात्रा
- करीमाबाद गांव : 3-4 व्यक्ति, 3 स्त्रियों सहित (गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के पारिवारिक सदस्य)
- एसएस गांव: गिरफ्तार बच्चों के परिवारजन
- एस बी गांव: गिरफ्तार बच्चों के परिवार
- एक पंडित परिवार (2 वृद्ध)
- सीआरपीएफ जवान
- सेव उत्पादक: 2 पुरुष
- कुल लगभग 25 लोग

सोपोर/कुपवाड़ा

- हमने दो गांवों और सोपोर की फल मंडी का भ्रमण किया।
- सोपोर फल मंडी: 4-5 मंडी अधिकारी
- प्रिंगरु गांव: 5-6 ग्रामीण
- भांडी गांव: 5-6 लोग: सरपंच एवं अन्य ग्रामीण, पुलिस हिरासत में मरे युवक की माँ और चाचा, पीएसए के अंतर्गत आगरा जेल में बंदी पीसी जिले के अध्यक्ष के पुत्र
- कुल लगभग 15 लोग

कुल अनुभव

इन पांच दिनों में जिन लगभग 75 लोगों से हमने बात की उनमें से एक भी अनुच्छेद 370 की अवमानना और अनुच्छेद 35ए के समाप्त किए जाने और राज्य के केंद्र शासित प्रदेश बनाए जाने से प्रसन्न नहीं दिखा। हर एक व्यक्ति ने 'आजादी' हासिल करने की बात की, चाहे उनके लिए इसका मतलब पूरी आजादी, यानी हिंदुस्तान या पाकिस्तान किसी के भी साथ नहीं, या पाकिस्तान के साथ पूरी तरह मिलना कुछ भी रहा हो! हुर्रियत नेता गिलानी को अपना मुख्य नेता मानने के साथ ही पाकिस्तान के पक्ष के लोगों की संख्या एकाएक बढ़ी दिखाई दी। केंद्र सरकार के अनुच्छेद 370 हटाये जाने के बाद (कश्मीर के) पूर्ण विलय के दावे को लोग सिरे से खारिज करते मिले, विशेष रूप से इस आलोक में कि यह दावा पूर्ण रूप से संचार माध्यम पर प्रतिबंध, भारी संख्या में सैनिकों की तैनाती, जबर्दस्त दमन, और ऐसे मौलिक अधिकारों को समाप्त कर दिए जाने के बल पर हासिल हुआ माना जा रहा है जो हिंदुस्तान के प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है।

हम एक वृद्ध पंडित व्यक्ति से मिले जिसने आजादी के सवाल पर इसलिए असहजता दिखाई कि, ''मेरे बच्चे दिल्ली में हैं इसलिए मैं उनसे दूर नहीं रह सकता।'' लेकिन उसने भी कहा, ''यहां के लोग दिल से कभी भी अब भारत का अंग होना स्वीकार नहीं कर पाएंगे।'' वह

भी अनुच्छेद 370 को समाप्त किए जाने से खुश नहीं थे, हालांकि उन्हें लगता था कि ''सरकार इस स्थिति से निपट लेगी क्योंकि भारत के सामने पाकिस्तान की कोई बराबरी नहीं है।''

हंदवारा में नेशनल कॉन्फ्रेंस के एक समूह ने आशा जताई कि अनुच्छेद 370 को पुन: लागू कर दिया जाए तो स्थिति सामान्य हो सकती है, लेकिन उन लोगों ने भी कहा, ''आजादी कौन नहीं चाहेगा?'' एक गुज्जर सरपंच ने, जो यह मानता था कि वह कश्मीर में अनुसूचित जनजाति के रूप में अल्पसंख्यक है, कहा कि ''जानवर तक आजादी चाहता है।''

श्रीनगर में एक दुकानदार ने कहा कि 370 तो वैसे ही इतना ढीला हो चुका था कि उससे बहुत फर्क नहीं पड़ने वाला था, ''बावजूद इसके वो हमारी पहचान थी।'' इस तरह के कुछ अपनी अलग-अलग समझ के बावजूद सभी यह महसूस करते मिले कि उन्होंने अपनी पहचान खो दी है और उनसे स्वयं अपने भविष्य के लिए परामर्श न लेकर अपमानित किया गया है।

जनता के प्रतिरोध का एकमात्र रास्ता सत्याग्रह या अहिंसक नागरिक अवज्ञा (सिविल नाफरमानी) ही है। गंभीर आर्थिक और शैक्षणिक नुकसानों के बावजूद पूरे राज्य में चारों तरफ बंद चल रहा है। मुख्यधारा के दलों से लेकर अलगाववादी नेताओं तक सभी जेल में हैं, यह सत्याग्रह स्वयं जनता द्वारा चलाया जा रहा है। कहीं-कहीं इसमें सामाजिक दबाव भी दिखाई देता है, लेकिन ज्यादातर यह पूरी तरह स्वेच्छा से चल रहा है। यह आतंकवादियों के निर्देशन में नहीं चल रहा, जैसा कि सरकार प्रचारित कर रही है!

लोग 2019 की इस स्थिति की समानता 2016 में बुरहान वानी की हत्या के समय से बैठा रहे हैं। हालांकि उससे कुछ बड़ा फर्क है। पहला, इस समय किसी नेतृत्व के बिना जनता स्वयं काम कर रही है। दूसरे, यह कि यह पूरी घाटी में है (उस समय यह प्रमुखत: दक्षिण कश्मीर में था), और तीसरे यह कि वे लोग भी जो पहले भारत सरकार के साथ थे अब पूरी तरह खिलाफ हो गए हैं। सरकार का यह दावा गलत है कि एक बड़ा सुधार यह हुआ है कि कहीं कोई खुला प्रतिरोध नहीं है और कोई मृत्यु नहीं हुई है। एक तो यह कि भले ही कम लोग मारे गए हों लेकिन मारे जरूर गए हैं, और दूसरे यह कि प्रतिरोध की कोई नई रणनीति बनने तक यह मौन तात्कालिक ही है। इस प्रकार का संचार प्रतिबंध और प्रमुख दलों के नेताओं की व्यापक गिरफ्तारी अपने आप में नया और अप्रत्याशित है।

''भारत में जाओ और गांधी की हर मूर्ति को ढंक दो जिससे उन्हें यह जिल्लत न झेलनी पड़े''

जहां लोगों में भारत सरकार के प्रति नफरत भरी है वहीं हम सामान्य भारतीयों के प्रति उन्होंने पर्याप्त गर्मजोशी और आतिथ्य का प्रदर्शन किया। उन्हें भारतीयों से कोई शिकायत नहीं है, जब तक कि वह किसी समाचार एजेंसी से संबंधित न हो। कश्मीर का प्रेस पूरी तरह सेंसर में है, सिवाय यह बताने के कि सब-कुछ सामान्य है और लोग खुश हैं। सरकार हर रोज पूरे-पूरे पन्ने के विज्ञापनों द्वारा यह बताने में लगी है कि 370 हटाये जाने के क्या-क्या फायदे हैं। राष्ट्रीय संचार माध्यमों के संवाददाता ईमानदारी से नागरिक अधिकारों की अवहेलना और प्रताड़ना की सूचना देते हैं लेकिन वह समाचार नहीं बन पाते। उन्होंने बताया कि पिछले दो महीनों में कश्मीर में अनुच्छेद 370 के बारे में एक भी संपादकीय नहीं आया। सबको यही लग रहा है कि जैसे उन्हें फोन और इंटरनेट के बिना पाषाण-युग में धकेल दिया गया है।

उच्च न्यायालय नाम के लिए ही काम कर रहा है। वकीलों ने हमें बताया कि करीब 300 हेबियस कार्पस याचिकाएं दायर कि गई हैं लेकिन न्यायालय ने उदारतापूर्वक सरकार को इतना समय दे दिया है कि तब तक उन पर सुनवाई ही बेमानी हो जाएगी। शायद ही कोई निजी वकील मौजूद था।

कश्मीर के गावों की एक सरसरी यात्रा से भी वहां की संपन्नता का स्तर भारत के बहुत से हिस्सों से बेहतर नजर आता है। स्वच्छ भारत अभियान, उज्ज्वला योजना, आवासीय योजनाओं की यहां कोई जरूरत नहीं लगती, क्योंकि हर कांई के पास अपना पक्का मकान, शौचालय, गैस सिलेंडर है।

दूर तक देखा जाए तो मोदी सरकार का यह उकसाने वाला कदम यहां फिलस्तीनी तरीके के कब्जे के परिणाम देने वाला लगता है। वहां कुछ सुधार नहीं किए गए तो इसका भारी मूल्य न केवल कश्मीरियों को बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था और राज्य व्यवस्था को भी चुकाना पड़ेगा।

मुख्यधारा का नेतृत्व काफी कुछ खारिज हो चुका है। हमें यह बार-बार सुनने को मिला कि अगर फारूक अब्दुला जैसे पसंदीदा व्यक्ति (भारत सरकार के) को जेल भेजा जा सकता है तो आम आदमी क्या उम्मीद कर सकता है। उन्होंने यह भी बार-बार इशारा किया कि अमरनाथ यात्रियों को बीच में ही वापस भेज कर हिन्दू धार्मिक भावनाओं का भी ख्याल नहीं रखा गया।

आर्थिक नुकसान

कर्फ्यू और बंद के बीच लोग भारी आर्थिक नुकसानों से जूझ रहे हैं। यद्यपि आधिकारिक तौर पर वहां कोई प्रतिबंध नहीं है, लेकिन जब-तब सरकार प्रतिबंधों को फिर से लागू कर दे रही है

इसलिए अनिश्चितता बनी हुई है। मिसाल के लिए, पत्रकारों ने हमें बताया कि सरकार घोषणा करती है कि उसने 20 पुलिस थाना क्षेत्रों से प्रतिबंध हटा लिए हैं लेकिन वे कौन से क्षेत्र हैं यह नहीं बताती, इसलिए लोग कभी पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो पाते। सैनिकों की भारी मात्रा में मौजूदगी बनी हुई है, जिससे लोग असुरक्षित महसूस करते हैं।

एक टैक्सी चालक जो पहले 8000 रु. मासिक कमाता था अब 5000 रु. कमा रहा है। उसने कहा, ''370 ने मेरी 3000 की मासिक आय मार दी।' एक आटो चालक ने बताया कि वह 16 कमरों वाले एक होटल का संचालन करता था,

सरकार कहती है कि प्रतिबंध उठा लिए गए हैं लेकिन कब प्रतिबंध अचानक लागू हो जाता है, पता नहीं चलता। अनिश्चितता बनी रहती है। स्कूल खुले हैं मगर बच्चे नहीं आते। तो, यह अजीब 'सामान्य' स्थिति है

लेकिन अब पर्यटक नहीं हैं तो उसे आटो चलाना पड़ रहा है।

दुकानें केवल सवेरे 7 से 9 बजे तक खुलती हैं। बंद ज्यादातर स्वेच्छया है लेकिन कुछ सामाजिक दबाव भी बनता है। मिसाल के लिए, हमें बताया गया कि सौरा में एक सब्जी बेचने वाले ने जब अपनी दुकान दिन भर खोले रखी तो वह जला दी गई, एक दूध वाले को अपनी दुकान आधे दिन तक खोले रखने पर 'आखिरी चेतावनी' दी गई, एक सेव उत्पादक द्वारा अपने फल बेचने के कारण रात में उसके छह पेड़ काट दिये गए। एक आटो चालक ने बताया कि पत्थरबाजी के डर से अब वह बाजार की ओर नहीं जाता, इसलिए वह रात में अपना आटो अपने ससुराल वालों के यहां खड़ा करता है और वहां से 2 किलोमीटर पैदल बाजार में स्थित अपने घर जाता है। वह शाम को केवल थोड़े समय के लिए आटो चलाता है।

9 तारीख को हमने एक परिवार को अपना रेस्तरां पूरे दिन खुला रखना शुरू करते देखा। यह संभव है कि लोग मजबूरी में धीरे-धीरे अपने व्यवसाय को फिर शुरू करने में लगें। हालांकि, एक सेव उत्पादक ने हमसे कहा कि वह आजादी पाने के लिए सेव की फसल उगाना और उन्हें बेचना छोड़कर प्रति वर्ष अपना 9 से 10 लाख रु. नुकसान उठाने को तैयार है (देखिए, इस रिपोर्ट का सेव व्यापार वाला खंड)।

हाउसबोट मालिक, कामगार और वह सभी जो पर्यटन पर निर्भर हैं विशेषत: प्रभावित हुए हैं। 5 कमरों वाले एक हाउसबोट के मालिक ने बताया कि उसे इस साल 7 लाख का घाटा हुआ है। गुजरात से मंगाकर हाउसबोट पर पर्यटकों को परफ्यूम बेचने वाले एक दुकानदार ने कहा कि संचार माध्यमों के बंद रहने के कारण वह अपने सप्लायरों से संपर्क नहीं कर सका है, हालांकि उससे भी क्या फर्क पड़ता जब खरीददार ही नहीं हैं।

शादी-विवाह चलते रहते हैं, लेकिन उनमें खाने और मेहमानों की मात्रा काफी कम है। अनाथों की शादी आयोजित करवाने वाले 'आस' नाम के एक एनजीओ के संचालक ने बताया कि पिछले साल उसने मौके पर बिरयानी परोसी थी, लेकिन इस साल केवल कहवा से काम चलाना पड़ा।

श्रीनगर और गांवों दोनों जगहों पर कई लोगों ने हमें बताया कि कश्मीरी इस तरह के प्रतिबंधों और बंद को केवल इसलिए झेल पा रहे हैं क्योंकि उनमें परस्पर सहयोग और सहायता की सामुदायिक परंपरा बनी रही है, जो संघर्ष के दिनों में और मजबूत हो जाती है। जो नहीं झेल पाते उन्हें राशन आदि मुहैया कराया जाता है। श्रीनगर में अंचर जैसी जगहों पर जहां लोगों ने स्वयं बाहर से आवाजाही रोक रखी है वहां कई लोग खेतिहर हैं, जिन्होंने धान का पर्याप्त भंडार जुटा रखा है।

सेव व्यापार

हमने शोपियां और सोपोर की फल मंडी का दौरा किया। शोपियां की फल-मंडी पूरी तरह बंद थी और वहां बाहर ट्रक तक खड़ी नहीं थी। हम एक सेव उत्पादक से मिले तो उसने कहा कि यदि बंदी से आजादी हासिल कर सकें तो वह इसके लिए लाखों का नुकसान उठाने के लिए तैयार है।

सोपोर फल-मंडी भी बंद मिली, लेकिन सरकारी बागवानी विभाग जहां नाफेड द्वारा फलों की खरीद की जाती है वह खुला था। नाफेड अधिकारियों का कहना था कि जहां सोपोर फल मंडी से सामान्य रूप से 300 ट्रक प्रति दिन रवाना होते थे वहीं 15 सितंबर से, जब से बाजार हस्तक्षेप कार्यक्रम की घोषणा की गयी है, वह किसी तरह 3 ट्रक ही भेज पा रहे हैं। हालांकि, उनका कहना था कि एक तो जिन लोगों ने आजादपुर मंडी के व्यापारियों से पहले से करार कर रखा है वह उसे सीधे वहाँ से भेज रहे हैं। दूसरे यह कि मंडी के बाहर भी कुछ अनौपचारिक खरीद-फरोख्त हो रही है। जो भी हो, मंडी के भीतर तो एक प्रकार का पूर्ण बंद सा ही नजर आया।

पिछले साल मंडी ने 1000 करोड़ का रोजगार किया था। बारामुला जिले के कुल 94,000 किसानों में से मात्र 586 किसान ही अपने विक्रय के लिए नाफेड में पंजीकृत हुए हैं। इन 586 में से भी 46 ही ऐसे हैं, जिन्होंने अपना उत्पाद नाफेड को बेचा है। जो कुल 30 मीट्रिक टन हुआ जिसे 3 ट्रकों में भेजा गया।

जहां एमआइएस को सेव उत्पादकों

के लिए लाभकारी बताया जा रहा है, वहीं सेवों के विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किए जाने से किसानों को नुकसान लग रहा है। पहले प्रत्येक कैरेट में मिलीजुली श्रेणी के सेव होते थे जिन्हें उच्चतम श्रेणी के नाम से बेचा जाता था।

हंदवाड़ा में लोग अपने अनुबंधों/करारों के अनुसार काम कर रहे हैं, लेकिन जिन्होंने करार नहीं किए हैं वह नुकसान में हैं। उन्हें अपने ऐसे पड़ोसियों को अपने सेव बेचने पड़ रहे हैं, जिन्होंने करार कर रखे हैं। उन्हें इस बात की भी कोई जानकारी नहीं होती कि उनके उत्पाद वास्तव में किस दाम पर बिके हैं।

धार्मिक प्रतिबंध

इस वर्ष ईद कहने के लिए मनाई गई। कुपवाड़ा के कलमाबाद में पुलिस ने गांव-गांव घूमकर लोगों को हिदायत दी कि वे ईदगाह में एकत्रित न हों और लाउडस्पीकर का उपयोग न करें। लोगों ने अपने पड़ोस की मस्जिदों में ही ईद की नमाज अदा की। कलमचकला ईदगाह में कोई नमाज अता नहीं हुई।

शैक्षणिक नुकसान

तकनीकी रूप से स्कूल खुले हैं, लेकिन कोई बच्चा स्कूल नहीं जा रहा। शिक्षक दिन में दो घंटों के लिए, और कभी-कभी सप्ताह में 2-3 बार हाजिरी लगाते रहते हैं। सौरा में एक छह साल की बच्ची ने कहा कि वह स्कूल जाने से डरती है क्योंकि 'पुलिस अंकल गोली मारेंगे'। मां-बाप इतने सैनिकों की मौजूदगी और बिना फोन के अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहते। हमें बताया गया कि 5 अगस्त से ही केंद्रीय रिजर्व बल ने एस.पी. हायर सेकेन्डरी स्कूल में डेरा डाला हुआ है, लेकिन हम खुद इसकी पड़ताल नहीं कर सके।

ग्रामीण स्कूल बंद हैं। अगर यह नजदीक भी हैं तो सभी ओर सैन्य बल तैनात है और लोगों को डर है कि कहीं कोई वारदात या गोलीबारी न हो जाए।

पुलवामा के परिगाम गांव की कक्षा 11वीं की एक छात्रा जो मेडिकल की प्रवेश परीक्षा के लिए श्रीनगर के एक कोचिंग में पढ़ रही थी अपने गाँव में अपने घर लौट आई। नवंबर के अंत में परीक्षा की घोषणा हो गयी है लेकिन उसने कहा कि वह कैसे उसमें सम्मिलित होगी क्योंकि पाठ्यक्रम तो पढ़ाया नहीं जा सका है। वह केवल उसी को दोहरा सकते हैं, जो तब तक पढ़ाया गया था, नई सामग्री को वह अपने से कैसे पढ़ सकते हैं! वह नहीं जानती कि वह प्रवेश परीक्षा में कैसे सम्मिलित होगी।

श्रीनगर के मिडिल कक्षा के स्कूल के एक शिक्षक ने बताया कि वह उन सभी बच्चों को निर्धारित शैक्षिक कार्य (एसाइनमेंट) वितरित कर रहे हैं जिनके पते उनके पास हैं, पर वो नहीं जानते कि शेष बच्चों तक कैसे पहुंचा जाए!

एक कॉलेज की प्राध्यापिका ने बताया कि वह और उसके सहकर्मी क्रमानुसार कालेज जाते रहते हैं लेकिन कोई छात्र नहीं आ रहा है। 9 अक्टूबर को जब कालेज आधिकारिक रूप से खोला गया उस दिन एक भी छात्र उन्हें नहीं मिला। किसी सार्वजनिक यातायात की सुविधा के बिना यह समझना मुश्किल है कि स्कूल और कालेज के छात्र किस प्रकार अपने शिक्षण संस्थानों में पहुंचेंगे!

बच्चों/अवयस्कों कि गिरफ्तारी

छोटे-छोटे बच्चों को, यहां तक कि कुछ छह साल तक को भी, उठाकर दिन भर या कुछ ज्यादा दिनों के लिए बंद कर दिया जाता है या कई दिनों तक सवेरे से शाम तक रिपोर्ट करने को कहा जाता है।

ज्यादातर ऐसे मामलों में कोई दस्तावेज भी नहीं बनाए जाते। ऐसे कई मामलों में उनके पिता या किसी रिश्तेदार को हर एक दिन थाने में रिपोर्ट करनी होती है, जो एक प्रकार से अपने बंधक बच्चों की जमानत देना जैसा होता है। बच्चों को मस्जिद के लाउडस्पीकर से प्रतिरोध वाले तराने बजाने या पत्थर फेंकने के आरोप में उठाया जाता है। जैसा कि हमें एक मामले कि जानकारी मिली, यह 5 अगस्त से पहले भी होता रहा है, जो अब बहुत बढ़ गया है।

पुलवामा और श्रीनगर दोनों जगहों पर हमें बताया गया कि बच्चे रात में अपने घरों में भी सोने से डरने लगे हैं कि कहीं उन्हें उठा न लिया जाए। वह अपनी दादी या अन्य किसी रिश्तेदार के पास सो जाते हैं।

एक साल या उससे कुछ अधिक से सैन्य बल गांवों के हर एक घर की जनगणना के काम में लगाया गया है। इससे 5 अगस्त के बाद युवकों से युक्त परिवारों को लक्ष्य करना आसान हो गया।

हंदवाड़ा में लोग अपने अनुबंधों/करारों के अनुसार काम कर रहे हैं, लेकिन जिन्होंने करार नहीं किए हैं वे नुकसान में हैं। उन्हें अपने ऐसे पड़ोसियों को अपने सेव बेचने पड़ रहे हैं, जिन्होंने करार कर रखे हैं।

हमें निम्नलिखित मामले मिले:

एसएस गांव, शोपियां जिला

12 से 20 वर्ष की आयु के करीब 20 बच्चों को उठा लिया गया और 15 से 20 दिनों तक रखा गया। 12 साल के कक्षा सात में पढ़ने वाले एक बच्चे एस. एन. को 10 अगस्त को उठाया गया और 25 सितंबर को एक बालसुधार गृह में छोड़ दिया गया। उसके ऊपर पत्थरबाजी, घरों और गाड़ियों को नुकसान पहुंचाने आदि के छह मामले दर्ज हैं। हम उसके मां-बाप से नहीं मिल सके और पूरे विस्तार से सब नहीं जान सके।

उस गांव से उठाए गए अन्य बच्चों में निम्नलिखित भी सम्मिलित हैं-

1) एस.ए.एम., आयु 14/15 वर्ष, कक्षा 10 का छात्र

2) ए.बी.एस., आयु 14/15 वर्ष, कक्षा 10 का छात्र

3) ए.एफ., आयु 16 वर्ष

4) आई.ए.पी., यह एक गरीब घर से है जो मजदूरी करता है।

यह सब 10 और 20 अगस्त के बीच रात को 2 बजे के करीब अपने घरों से उठाए गए। इन्हें 20 से 25 सितंबर के बीच 2-3 के बैच में रिहा किया गया। एस.एन. को छोड़कर इनमें से किसी पर भी कोई मामला दर्ज नहीं हुआ।

इन्हें थाने में रखने के दौरान इनके परिवारों से इनके खाने-पीने के लिए प्रतिदिन के हिसाब से 100 रुपये भी लिए गए। उन्हें थाने में अपने परिवारजनों से मिलने के लिए हर दिन 10-15 मिनट का मौका दिया जाता था। जेलों में भारी भीड़ हो जाने की वजह से बच्चों के लिए लेटना-सोना भी मुश्किल रहा।

हम इन बच्चों से खुद नहीं मिल सके। हमें बताया गया कि वह घर से बाहर सेव तोड़ने के काम में लगे हैं (भले ही यह बात पूरी सही न भी हो), लेकिन हम उनके परिवार और गांव के बुजुर्गों से जरूर मिले।

एसबी गांव, शोपियां जिला

इस गांव में मई 2019 में बच्चों को उठाया गया था और फिर छोड़ दिया गया। हम उनमें से कुछ को और उनके माँ-बाप से मिले।

1) एस.एफ., आयु 12 वर्ष, कक्षा 5

2) ए.एम., आयु 9 वर्ष, कक्षा 4

3) ए.एस., आयु 12 वर्ष, कक्षा 3

4) एफ.एफ., आयु 14 वर्ष, कक्षा 7

ए.वाई. के घर दिन में 3 बजे दो व्यक्ति सादे कपड़ों में स्कूटर से आए और उसे उठा ले गए। फिर वे एफ.एफ. के घर आए और उसे थाने पर बुलाया। वह अपनी माँ के साथ गया। फिर वे ए.एम. और ए.एस. के घर पहुंचे और उन्हें भी थाने पर बुलाया। पुलिस ने छोटे बच्चों को रात में छोड़ दिया और उन्हें दूसरे दिन सवेरे वापस बुलाया। उन्हें दो बार धक्का मारा गया और कान पकड़ कर उठक-बैठक कराई गयी और मुर्गा बनाया गया। ए.एम. को 2016 में भी उठाया गया था जब वह मात्र छ: साल का था।

एफ.एफ. को दो अन्य लड़कों के साथ 5 दिनों तक अंदर रखा गया। उन्हें बेरहमी से पीटा गया। उसके पिता ने भी बताया कि जब वह उससे मिलने गया तो उसे बाद में आने को कहा गया और उसने देखा कि उसकी पिटाई हो रही है। इन बच्चों को एस. बी. गाँव में हनफी मस्जिद के लाउडस्पीकर पर तराना बजाने के लिए उठाया गया था। पुलिस ने उनका आईपैड और मस्जिद का लाउडस्पीकर जब्त कर लिया।

सनाउल्लाह की बेकरी पिछले दो महीनों से बंद पड़ी है। बेकरी बंद होने से ईद के लिए बनाए गए सामान के न बिक पाने के कारण उसे 2 लाख रुपयों का नुकसान हुआ है। अब वह सवेरे की नानवई (रोटी) बेचकर काम चला रहा है।

एफ.एफ. को एस.बी. गाँव से कुछ महीनों के लिए अपनी चाची के यहाँ भेज दिया गया था और हाल में ही लौटा था।

श्रीनगर

हमने एक बच्चे से बात की जिसे उठाया और छोड़ दिया गया था। इस छ: साल के एच. को कक्षा सात में पढ़ने वाले 12 साल के टी. के साथ 17 तारीख को दिन में 3 बजे एक मस्जिद से उठाया गया और थाने ले जाया गया। उन्हें बीच रात में छोड़ा गया। उसके बाद से टी. के पिता और एच. के दादा को सवेरे से शाम कई दिनों तक थाने में हाजिरी देते रहना पड़ा। एच. को अब बंदूक से खेलने में रुचि है और हर समय उसी के बारे में सोचता रहता है।

यातना के मामले

तीर्थ गांव, पुलवामा

पारीग्राम में पास ही पास दो सैन्य कैंप हैं। यहाँ का हाईस्कूल 2 महीने से बंद है। पहले जब सैनिक इस गाँव से गुजरते थे, वह गाँव वालों को परेशान नहीं करते थे। लेकिन 5 अगस्त के बाद से उन्होंने जब हुआ तब मुख्य सड़क पर पड़ने वाले घरों के युवाओं को उठाना और उन्हें यातना देना शुरू कर दिया है, जिससे उनमें डर पैदा किया जा सके। 6 अगस्त की रात को सेना ने क्रमश: एक के द्वारा दूसरे के घर पर दस्तक दिलवाते हुए कुल आठ घरों से 20 से 30 आयुवर्ग के 9 से 11 युवकों को उठा लिया।

पुलवामा के पारीगाम गाँव में हम 25 वर्ष के शबीर अहमद सोफी और 23 वर्ष के मुजफ्फर अहमद सोफी नामक दो भाइयों और उनके पिता सनाउल्लाह सोफी से उनके घर पर मिले। यह परिवार नानवई (रोटी) और बेकरी चलाता है। 6 अगस्त की रात को सेना ने पहले चौकीदार अब्दुल गनी के दरवाजे पर दस्तक दी और उससे कयूम अहमद वानी नामक एक आदमी को बुलाने के लिए कहा जो एक किराना की दुकान चलाता है। फिर कयूम से बेकर के घर का रास्ता दिखाने को कहा। जब सनाउल्लाह ने दरवाजा खोला तो सेना ने उसके लड़कों के बारे में पूछा (संभवत: पूर्व में हुयी जनगणना से सेना को उनके बारे में पता था जबकि उनके ऊपर कोई पुराना आपराधिक आरोप नहीं था)।

सोफी भाइयों, कयूम अहमद वानी, यासीन अहमद भट्ट, मुजफ्फर अहमद

भट्ट, अब्दुल गनी के बेटे समेत 9 से 11 युवकों को मस्जिद के बाहर एक स्थान पर ले जाया गया और रात में 12.30 से लेकर लगभग 3 बजे तक सड़क पर ही केबिल और छड़ी से पीटा गया। बेहोश हो जाने पर उन्हें होश में लाने के लिए बिजली का करेंट भी लगाया गया। लड़के अपने चारों हाथ पैर पर रेंगते हुये घर पहुंचे। वे पिछले दो महीनों से चल नहीं पा रहे हैं, काम करने का तो सवाल ही नहीं है। जब युवकों के परिवारजनों ने हस्तक्षेप करना चाहा तो उन्हें वापस कर दिया गया। सेना ने उन्हें धमकाया कि यदि कोई उन्हें रोकेगा तो उन युवकों की और अधिक पिटाई होगी। दूसरे दिन सुबह उन युवकों को हड्डी और जोड़ों की सर्जरी के लिए बारामूला में श्रीनगर के सरकारी अस्पताल ले जाना पड़ा। परिवारजन पुलवामा थाने में इसकी एफआईआर दर्ज करना चाहते थे, लेकिन थाने को कंटीले तारों से घेरकर बंद किया हुआ था।

सनाउल्लाह की बेकरी पिछले दो महीनों से बंद पड़ी है। बेकरी बंद होने से ईद के लिए बनाए गए सामानों के न बिक पाने के कारण उसे 2 लाख रुपयों का नुकसान हुआ है। अब वह सवेरे की नानवई (रोटी) बेचकर काम चला रहा है। पहले उसकी आय 25-30 हजार मासिक हुआ करती थी, जो अब कुछ भी नहीं रह गयी है।

गिरफ्तारियां/निरोधात्मक गतिविधियां (प्रिवेंटिव डिटेन्शन)

5 अगस्त से गिरफ्तारियों और निरोधात्मक कार्रवाइयों के मामले बढ़े हैं। जिन लोगों के विरुद्ध पुराने केस दर्ज रहे हैं उन्हें पकड़कर पुलिस स्टेशन में रख दिया जा रहा है। कभी-कभी उन्हें छोड़ दिया जाता है और कुछ को पी.एस.ए. में निरुद्ध कर श्रीनगर की सेंट्रल जेल अथवा आगरा भेज दिया गया है।

परिवार डरे हुए हैं कि कहीं उन्होंने विरोध किया या प्रेस से कुछ कहा तो उनके जिस संबंधी को उठाया गया है उसे पी.एस.ए. में जेल भेज दिया जाएगा।

परिगाम गाँव, पुलवामा

5 अगस्त के बाद से 5 लोगों को पुलवामा पुलिस स्टेशन ले जाया जा चुका है (तिथियाँ पता नहीं हैं)।

सेना ने दो लड़कियों को (जिनमें एक नर्सिंग की छात्रा है) उनके परिवारजनों को ले जाए जाते समय विरोध करने पर पीटा। हम इस परिवार से बात नहीं कर सके।

करीमाबाद गांव, शोपियां

यह एक घोषित उग्रवादी गांव है, जहां शहीदों की कब्रगाह में 11 कब्रें हैं। सेना ने दो-दो बार इस कब्रगाह को उधेड़ा है, लेकिन लोग इसे फिर-फिर बना देते रहे हैं और कब्रों पर कागज के फूल रख देते हैं। यहां भी सेना ने एहतियाती कार्रवाई के अंतर्गत युवकों को उठाया है और उन्हें आगरा भेज दिया है, जबकि उन्होने स्वयं किसी प्रकार की हिंसक गतिविधि में भाग नहीं लिया है।

गिरफ्तार लोगों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

1. मामून अहमद पंडित, आयु 17 वर्ष, पुलवामा डिग्री कालेज का दूसरे साल का छात्र, जिसे 7 अगस्त को गिरफ्तार कर पी.एस.ए. के अंतर्गत आगरा सेंट्रल जेल भेज दिया गया। उसका एकमात्र अपराध यह है कि वह 2016 में मारे गए सर्वज्ञात उग्रवादी नासिर अहमद पंडित का सबसे छोटा भाई है।

हम उसकी मां से मिले तो उन्होंने बताया कि सेना 7 ता. को रात 2 बजे आई और परिवारजनों को बताया गया कि 15 अगस्त तक के लिए युवकों को रोकथाम के रूप में निरुद्ध किया जा रहा है। लेकिन जब परिवारजन 16 अगस्त को पुलवामा थाने गए तो मालूम हुआ कि उसे वहाँ से ले जाया जा चुका है।

2. मुनिरुल इस्लाम, आयु 20, अका सुहैल, पुत्र बशीर अहमद पंडित, 8 अगस्त को रात 2.45 पर गिरफ्तार किया गया। हम उसकी बहन से मिले जिसने बताया कि सेना के लोग गेट फांदकर अंदर घुसे और उन्होंने सुहैल के लिए पूछा। फिर उसे गर्दन और बाल से पकड़ कर घसीटते हुए बाहर ले गए। बहन और माँ को घर के अंदर धकेल दिया गया। सैनिकों ने दो बार जमीन पर फायर किया और फिर खाली कारतूस उठा ले गए। हमने घर में जमीन पर गड्ढे बने देखे।

मुनिरुल को पहले जुलाई में भी ले जाया गया था। उसके बाल काट दिए गए थे और उसको पीटा गया था। पुलिस स्टेशन पर परिवारजनों को बताया गया था कि 15 अगस्त के बाद उसे छोड़ दिया जाएगा।

14 अगस्त को उन्होंने सुना कि उसे अस्पताल ले जाया जा रहा है। परिवारजन उससे थाने में मिले। लेकिन तुरंत ही उसे श्रीनगर जेल और फिर आगरा जेल भेज दिया गया।

3. बिलाल अहमद डार (दो छोटे छोटे बच्चों का बाप)। हम उसके परिवार के किसी भी व्यक्ति से नहीं मिल सके, इसलिए विस्तार से कुछ नहीं जान पाए।

इन तीनों के विरुद्ध पत्थरबाजी, कारों को तोड़ने, उग्रवादियों को मदद देने आदि के आरोप हैं। लेकिन हमें इस मामले में कोई दस्तावेज नहीं मिले और परिवारजन भी न तो आगरा जा सके हैं और न ही कोई वकील कर पाए हैं।

प्रोंगरू गांव, हंदवारा

इस गांव से 3 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया है, जो अभी जेल में हैं। हम उनके परिवार से मिले।

1. मोहम्मद शफी मीर, पुत्र मोहम्मद मकबूल मीर, आयु 35

2. असगर मक़बूल भट्ट

3. नदीम मोहम्मद शेख

3 सितंबर को पुलिस उनके घर पहुंची और उन्हें 2018 की एक एफआइआर के मामले में कलमाबाद पुलिस स्टेशन आने को कहा। जब

मोहम्मद शफी मीर अपने पिता के साथ वहाँ गया तो उन्हें बताया गया कि पत्थरबाजी और मनान वानी के जनाजे में शामिल होने के आरोप में उसकी तलाश थी। उसकी रिमांड लगातार बढ़ती रही है।

25 वर्ष के जहूर अहमद की भी पुलिस को तलाश थी। चूंकि वह घर पर नहीं था तो पुलिस उसके 17 वर्ष के भाई दानिश को उठा ले गयी और उसे 3 दिनों तक थाने में रख लिया जब तक की जहूर नहीं आ गया। जहूर को 18 दिनों बाद छोड़ा गया। उस पर नारेबाजी का आरोप था।

श्रीनगर

ओम, आयु 18 वर्ष, सरकारी हाईस्कूल में कक्षा 12 का छात्र। इसे 2 अक्टूबर को गिरफ्तार किया गया और 8 अक्टूबर को छोड़ दिया गया। हम ओम के परिवार से मिले। हमें बताया गया कि पुलिस की 17 गाडियां उनकी बस्ती में आईं और पुलिस आंगन का गेट फांदकर अंदर घुसी और उसने दरवाजा खटखटाने की बजाय जबरन तोड़ दिया। अंदर महिलाओं पर राइफल की बट से प्रहार किया और ओम को जबरदस्ती उठा ले गए जबकि वह अपनी आइडी लेने के लिए ऊपर की सीढ़ियां चढ़ रहा था। ओम के पिता को दीवाल की ओर ढकेल दिया, जिससे उनका हाथ टूट गया और सीने पर चोट लगी। पुलिस ने मिर्ची पाउडर और आँसू गैस का भी प्रयोग किया।

सामुदायिक जमानत प्रणाली: जब कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है तो समुदाय के लोगों से उसकी जमानत लेने को कहा जाता है। ओम के मामले में क्षेत्र के 20 बुजुर्गों को रोजाना बुलाया जाता रहा। उनके पहचान पत्र जब्त रखे जाते थे और उन्हें 1 से 2 घंटे या कभी-कभी पूरा दिन वहाँ बिताना होता था।

मीडिया से बात करने पर गिरफ्तारी

सौरा के एक दुकानदार इनायत अहमद को अल जजीरा से बात करने और विरोध में शामिल होने के कारण 29 अगस्त को गिरफ्तार किया गया। 15-16 दिन थाने में रखने के बाद उसे पीएसए के अंतर्गत श्रीनगर सेंट्रल जेल भेज दिया गया। दर्ज चार्जशीट के मुताबिक वह 7 अगस्त को पत्थर फेंकने का दोषी था। जो यह देखते हुए कि वह दो बच्चों का बाप है, बिलकुल सही नहीं लगता। पहली एफआइआर (पत्थर फेंकने की) 7 अगस्त की है, और दूसरी विरोध मार्च में शामिल होने और पाकिस्तान समर्थक नारे लगाने की 30 अगस्त 2019 की है।

हिरासत में मृत्यु

3 सितंबर 2019 को नंदपोरा भांडी वार्ड के भांडी गांव के लगभग 20 वर्षीय रियाज अहमद तिखरी की मौत : भांडी एक गुज्जर गांव है जहां गुज्जरों के विरुद्ध जंगल के नियमों के मामलों में अनेक केस दर्ज रहते हैं। गांव वालों का कहना है कि वन्य अधिकारी/सरकारी कर्मी 10 रु. से 20,000 रु. तक घूस लेते हैं। उन्हें प्रत्येक सुनवाई के दिन 500 रु. वकील पर खर्च करने पड़ते हैं और आने-जाने में कुल खर्च 1000 रु. तक हो जाता है।

एक ने बताया कि वह 2005 से ही कचहरी का चक्कर मार रहा है। 2010 से वन विभाग ने गुज्जरों के आने-जाने का मार्ग कंटीले तारों से रोक दिया है।

सौरा के एक दुकानदार इनायत को अल जजीरा से बात करने और प्रदर्शन में शामिल होने के कारण 29 अगस्त को गिरफ्तार किया गया। 15-16 दिन थाने में रखने के बाद उसे पीएसए के अंतर्गत श्रीनगर सेंट्रल जेल भेज दिया गया।

रियाज अहमद लद्दाख में मजदूरी करके लौटा ही था कि 2 सितंबर को पुलिस पहुंच गई और उसे एक साल पुराने एक लट्ठे की स्मगलिंग के आरोप में थाने बुलाया। 3 तारीख को पुलिस उसके चाचा जमालदीन शबंगी के घर गई और उसे थाने बुलाकर बताया गया कि उसके भतीजे ने अपने सलवार के नाड़े से आत्महत्या कर ली है।

जमालदीन और अन्य लोगों ने देखा कि रियाज की नाक टूटी हुई थी और उसके शरीर का दाहिना हिस्सा कंधे से लेकर जांघों के ऊपर तक चोट खाया और नीला पड़ा था। हंदवारा अस्पताल में उसका पोस्टमार्टम हुआ, लेकिन परिवार को उसके रिपोर्ट की कोई प्रति नहीं सौंपी गई।

रियाज की मां शिरीना बेगम अंधी हैं। तीन भाई हैं, दो छोटे हैं जो अब मजदूरी करते हैं। रियाज ही उनका मुख्य भरण-पोषण करने वाला था।

पुलिस की हिरासत में रियाज के मरने पर उसके जनाजे के साथ कलमाबाद में हेरल से वरपुरा तक विरोध मार्च निकाला गया। लेकिन पुलिस ने उस पर आंसू गैस छोड़ी और शव को जबर्दस्ती कब्जे में लेकर किसी और के पहुंचने के पहले ही उसके घर के पास ही दफना दिया। उसके चाचा जमालदीन को उस विरोध के दौरान चेहरे पर चोट भी आई।

निष्कर्ष

अगर अनुच्छेद 370 को बहाल करने और जम्मू-कश्मीर को पूर्व की तरह संघ के एक राज्य के रूप में पुनर्स्थापित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय से हस्तक्षेप किया गया होता, या अभी भी किया जाए, तो लोगों का गुस्सा कुछ शांत किया जा सकता है। हालांकि, कश्मीर और भारत के भविष्य के बारे में जैसे कश्मीर और उसके बाहर के अन्य लोग अनिश्चित हैं, वैसे ही हम भी हैं। ■

लिखने की वजहें

डॉ. रेनू यादव

गिरधर राठी उन कवि-लेखकों में हैं जो बहुत गहरी चुप्पी के साथ कविता का दामन थामे रहे। जब नई कविता, साठोत्तरी कविता और अस्मितापरक कविता के दौर में साहित्यकार अपना-अपना झंड़ा बुलंद कर रहे थे तब गिरधर राठी साप्ताहिक पत्रिका 'प्रतिपक्ष' का संपादन कर रहे थे। प्रतिपक्ष इमरजेंसी में बंद हुई और राठी जी को जेल की सजा काटनी पड़ी। लगभग सत्तरह-अट्ठारह महीनों तक कारागार के सफर ने उन्हें और भी अंतर्मुखी बना दिया। अपने संकोची स्वभाव के कारण दृश्य होते हुए भी अदृश्य बने रहे।

हाल में गांधी शांति प्रतिष्ठान में उनकी नौ पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। संभावना प्रकाशन, हापुड़ से 'नाम नहीं', 'कविता का फिलहाल', 'कल, आज और कल', 'कथा-संसार: कुछ झलकियां', 'सोच-विचार', रज़ा फाउंडेशन के सहयोग से राजकमल प्रकाशन से 'गांधी की मृत्यु', नियोगी बुक्स से अंग्रेजी में 'हिंदी शॉर्ट स्टोरीज: एडीटर्स च्वायस', सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर से 'बातचीत मित्रों से' तथा 'करिश्मों का ताना-बाना' पुस्तकें प्रकाशित हैं।

'नाम नहीं' राठी जी के चार काव्य-संग्रहों 'बाहर-भीतर', 'उनींदे की लोरी', 'निमित्त' और 'अनिश्चय आरंभ के' का संकलन है।

'कविता का फिलहाल' में भारतीय और विदेशी कविता पर समीक्षाएं, लेख-आलेख, 2003 में गुवाहाटी में 'भारतीय कविता का आधुनिकीकरण' विषय पर दिए व्याख्यान आदि का संकलन है।

'कल, आज और कल' में साहित्यिक एवं गैर-साहित्यिक विषय, समसामयिक विषयों तथा लेखक एवं सत्ता में अंत:संबंधों पर लेख हैं।

'कथा-संसार : कुछ झलकियां' में भारतीय एवं पाश्चात्य लेखकों के कुछ प्रमुख उपन्यास एवं कहानियों पर चर्चाएं एवं लेख संकलित हैं।

'सोच-विचार' पुस्तक आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता पर कुछ प्रश्न, भाषा एवं बोलियों पर लेख, अनुवाद पर सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर विचार तथा नाटकों एवं सिनेमा पर कुछ महत्वपूर्ण आलेखों पर आधारित है।

'गाँधी की मृत्यु' में 'नेमेथ लास्लो' नामक हंगेरियन नाटककार एवं कथाकार के नाटक का अनुवाद है।

'हिंदी शॉर्ट स्टोरीज: एडीटर्स च्वायस' में अंग्रेजी में प्रकाशित नौ कथाकारों की 17 कहानियों का संकलन है, जिसका अनुवाद लेखन ने 70-80 के दशक में ही किया था लेकिन यह 2018 में संकलन के रूप में प्रकाशित हुआ।

'करिश्मों का ताना-बाना' में चेक भाषा के प्रसिद्ध कहानीकार कारेल चापेक की कहानियां, डोरिस लेसिंग की अंग्रेजी कहानियों का अनुवाद, रूस के प्रसिद्ध कवि मंदेलश्ताम की पत्नी नदेज़्मा मंदेलश्ताम की आत्मकथा का अनुवाद, चीन के 'अंतिम सम्राट की कथा' जो 1988 में चीन से दो खंडों में छपी थी, संकलित हैं।

'बातचीत मित्रों से' में गिरधर राठी से 25-30 साल में अन्य लेखकों द्वारा लिए गए साक्षात्कारों का संकलन है।

'लिखना अच्छा लगता है' को स्वीकार करते हुए लोकार्पण के समय वे कहते हैं, 'मुझे ये कभी भ्रम नहीं रहा कि मेरे कवि होने और लिखने से समाज में कोई बहुत बड़ा बदलाव या आंदोलन आयेगा। लेकिन चेतना को जागृत करने का काम अवश्य करेगा। मुझे लिखना अच्छा लगता है इसलिए लिखता हूं।' इससे अधिक सहजता भला किस कवि में हो सकती है।

गिरधर राठी की नौ किताबें

- गांधी की मृत्यु

रज़ा फाउंडेशन के सहयोग से राजकमल प्रकाशन

- नाम नहीं
- कविता का फिलहाल
- कल, आज और कल
- कथा-संसार: कुछ झलकियां
- सोच-विचार

संभावना प्रकाशन, हापुड़

- 'हिंदी शॉर्ट स्टोरीज: एडीटर्स च्वायस'

नियोगी बुक्स

- बातचीत मित्रों से
- करिश्मों का ताना-बाना

सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर

ग्रेटर नोएडा में स्थित 'पोथी' वितरण केन्द्र में बैठे-बैठे न जाने क्या अपने मन में गुनते-बुनते रहते हैं, जो उनकी कविताओं को धार दे जाते है। कम बोल कर बहुत कुछ कह जाने वाले धीर-गंभीर, शांत स्वभाव के धनी है गिरधर राठी।

सचमुच, जब आपकी लेखनी बोलती हो, आपके कर्म बोलते हो तो आपको बोलने की जरूरत नहीं पड़ती। यह कहना गलत नहीं होगा कि गिरधर राठी जी के व्यक्तित्व की गुरूता, गरिमा उनके लेखनी में स्पष्ट झलकती है।

गिरधर राठी के चार काव्य-संग्रहों का संकलन है- नाम नहीं। इस पुस्तक के पहले पृष्ठ पर छपी 'तस्वीर देख कर' कविता इस संग्रह का रहस्य खोलती नजर आती है-

उनके फूलों में
हमारे जन्म-दिन छिपे थे
फूल उनके ही हाथों रहे
हमने पढ़े अखबार...

इनकी कविताएं विजयनारायण साही, रघुवीर सहाय और शमशेर की याद दिला जाती हैं। यह कहना गलत न होगा कि गिरधर राठी का गंभीर व्यक्तित्व इनकी कविताओं में भी झलकता है और गंभीर लोग आसानी से समझ में नहीं आतें और जब समझ में आते हैं तब परत-दर-परत कई-कई भावबोध के साथ उभरते चले जाते हैं। इसलिए इनकी कविताओं को कई-कई बार पढ़ना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक कविता देख सकते हैं - पुल

नदी स्थिर है
पुल बह रहा है

दोनों कूल जोड़ने वाला पुल
बह रहा है
ठीक नदी की विपरीत दिशा में
आत्महत्या करने जा रहा पुल
उद्‌गम-चट्टानों से कूदकर
टूट जायेगा

और पुल पर चढ़ा मैं
जो तुम तर पहुंचना चाहता हूं
और मुझ जैसे दूसरे मैं
पुल के साथ

तब नदी बहेगी
पुल के टुकड़ों को वक्ष पर लादकर
खून की लकीरें उभारतीं।

इस कविता की शुरुआत उलटबासी से होती है, उसके बाद प्रयोगवाद की छाप दिखायी देती है तीसरे अनुच्छेद में टूटन है चौथे में अस्तित्वबोध के साथ विपरीत परिस्थितियों में प्रेम करने वाला प्रेमी दिखायी देता है और अंत में नयी कविता की विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं।

'मुझे ये कभी भ्रम नहीं रहा कि मेरे कवि होने और लिखने से समाज में कोई बहुत बड़ा बदलाव या आंदोलन आएगा। लेकिन चेतना को जागृत करने का काम अवश्य करेगा। मुझे लिखना अच्छा लगता है इसलिए लिखता हूं।'

इस संग्रह की खास विशेषता है कि यह संग्रह किसी एक विचारधारा की मोहताज नहीं है। इसमें कई विशेषताओं से पूरित कविताएं हैं जैसे कि प्रेमपरक कविता, वात्सल्यपरक कविता, आत्मान्वेषणात्मक कविता, सामाजिक चेतना, व्यंग्यात्मक कविता, राजनीति पर कटाक्ष आदि।

इस संग्रह में सबसे पहले ध्यान जाता है प्रेमपरक कविताओं पर उसके बाद वात्सल्य पर। गिरधर राठी की कविताएं भावनाओं के खालीपन पर तैरती हुई कचोट की वह निशानी है, जो पाठक के ह्रदय पर अपने निशान छोड़ जाते हैं और दूर तक चीखती चीख सुनायी देती है। चाहे वह इमरजेंसी का समय हो या उसके बाद जीवन की आपा-धापी। प्रेम उनके साथ-साथ चलता है। खासकर शुरुआती दौर की कविताएं प्रेम में रची-बसी नजर आती है। तिहाड़ जेल में लिखी गयी अधिकतर कविताएं पत्नी के प्रेम और बच्चों की याद में लिखी गयी हैं। बहुत सुन्दर पंक्तियां है कि व्यक्ति कैसे दु:ख के क्षणों में आत्मीयता और सहारा चाहता है किंतु प्रेमालम्बन के अभाव में खाली-खाली सा रह जाता है -

यहां, इस जमीन को छूता हूं
यह तुम्हारी आंख की तरह गीली है
तुम्हारी देह की तरह स्पृश्य
सोंधी
तुम्हारी सांसों की तरह
इस जमीन पर लोट-पोट, मगर
यह मुझे बांहों में भरती नहीं
इस जमीन में कोई प्रवेश नहीं

'दु:ख के समय पछतावे की तरह उमड़ता है प्यार' या फिर 'उसकी गोद में आने पर मिल जाती पूरी एक दुनियां' जब अकेलेपन की दुनियां में विस्तृत हो तन-मन पर पसर जाती है तब कवि फिर से लिखते हैं -

अकेला करने के बाद
दूर तक साथ चला आता है
फिर अकेला नहीं छोड़ता
प्यार

वात्सल्य रस के लिए सूर का उदाहरण देना उचित न होगा क्योंकि यह कविता मध्यकाल में नहीं बल्कि नई कविता और उसके बाद के समय में लिखी गयी है। इसलिए सूर के साथ तुलना करना बेईमानी लगता है। एक तरफ बच्चों की चाहत - 'पापा तुम मेरे घर आओगे? हम रिंगा रिंग रोजेज... रिंग रिंग... डाउन' खेलेंगे... की इच्छा है तो दूसरी तरफ बिना छन्द अलंकारों के कुछ चन्द शब्दों में अपनी पूरी अस्मिता,

अस्तित्व, आशाएं, आकांक्षाएं, सपने सब एक साथ एक धुरी पर लाकर खड़ा कर देते हैं। कविता का शीर्षक है – 'बच्चे'

उनके होने में
हम हुए शामिल
हम
होने लगे

'पहाड़ हो जाता तिहाड़', 'तिहाड़ दृश्य' कविता के साथ-साथ अन्य कविताओं में भी तिहाड़ जेल का दर्दनाक अनुभव, पीड़ा, छटपटाहट, बेबसी 'अपनी-अपनी आत्मा में / फड़फड़ाते' स्पष्ट दिखायी देती है, ऊपर से कान्तासम्मति स्मृत्तियां और बच्चों की यादें जीने नहीं देतीं – 'बच्चे तुम्हारे पास / मेरे पास यादें। / यादें धकेलता परे परे परे...'।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कवि-कर्म सिर्फ प्रेम की पीड़ा की अभिव्यक्ति से पूरा नहीं हो सकता। वह भी तब जब वह एक जिम्मेदार पत्रकार हो। पत्रकार होने के नाते पत्रकारिता में आने वाले विरोधों, अवरोधों के साथ-साथ समाज की पीड़ा को उन्होंने अपने अंदर भोगा है। राजनैतिक षड्यंत्रों के कारण समाज की चरमराती दीवारों की तड़प सुनी हैं। कदाचित इसीलिए वे जानते हैं कि जनता के अन्दर छद्मी नेताओं से 'पहले डर था और अब लालच है'। 'तुरत बुद्धि का कमाल', 'मीडिया कोलाज एक मर्सिया' कविताओं का संदर्भ इसी के नतीजे हैं। बलात्कार के डर से लड़कियां लोगों के पदचाप सुनते ही कांप उठती हैं तो बिकाऊं न्याय के कारण पुलिस-थाने में अपनी शिकायत दर्ज करवाने से बचती हैं। रघुवीर सहाय का रामदास सिर्फ एक बार नहीं मरा बल्कि वह हर रोज कहीं न कहीं मॉब लीचिंग का शिकार हो रहा है। 'रामदास का शेष जीवन' अभी भी डरा हुआ है। वह राजनैतिक चक्रव्यूह में फंसकर कभी मुफ्त के लैपटॉप, मोबाइल, साइकिल बटोर रहा है, तो कभी 'ईश्वर' को उछालने या बचाने की जद्दोजहद में लगा हुआ है। सच तो यह है कि वह कोई जद्दोजहद नहीं कर रहा... बल्कि उसका दिल और दिमाग एक अदृश्य सत्ता जो सर्वत्र फैली है, जो दिखायी दे रही है पर हम देखना नहीं चाहते, सुनायी दे रहा है पर हम सुनना नहीं चाहतें, समझ में आ रहा है पर हम समझना नहीं चाहते, आवाज उठाना नहीं चाहते... ऐसी सत्ता के द्वारा लगातार दी जा रही 'स्लो-प्वाइजन' से स्थगित हो गया है। समाज ऐसा रोबोट बनता जा रहा है, जो देखता है, सुनता है, बतियाता है, एक्प्रेशन भी देता है, लेकिन उसका रिमोट सत्ता के हाथ में है, वह वहीं करेगा, जो सत्ता उससे करवायेगी। इसलिए कवि कहते हैं –

कुल जमा तीन पात्र
होंठ, कान, आंख
तीनों अपंग
नेपथ्य हाथ भांजता रह गया

कवि समाज को सतर्क करते हुए बार-बार कहते हैं कि आह और डाह, राह और राह, गुस्से और गस्से, भूखे और भुक्खड़, गाली और जुगाली, दीन और हीन, कवि और तुक्कड़ में फर्क करना जरूरी है

इसीलिए कवि समाज को सतर्क करते हुए बार-बार कहते हैं कि आह और डाह, राह और राह, गुस्से और गस्से, भूखे और भुक्खड़, गाली और जुगाली, दीन और हीन, कवि और तुक्कड़ में फर्क करना जरूरी है। तब जाकर कहीं हम अपने आपको बचा पाएंगे। वरना 'दांत और आंत, आंत और दांत' जैसे सवालों के जवाब हमें कभी नहीं मिल पायेंगे और हम 'कुछ नसें हैं जो खून दिल तक ले जाती हैं / दूसरी वे जो खून लेकर चली जाती हैं' के बीच उलझे ही रह जाएंगे।

अत: कह सकते हैं कि हमारे इर्द-गिर्द पसरी समय की छाती पर मानव की क्रूरता की कहानी कहने में गिरधर राठी सफल होते हैं। चीख-चिल्लाहटों से दूर शांत और सुघड़ भाषा ('सुघड़' शब्द इसलिए कि आज कविता बहुत चिल्लाने लगी है, कहती कम है, शब्दों की मर्यादा खोने लगी है) में असामाजिक तत्वों पर कटाक्ष करते नजर आते हैं। प्रेम और वात्सल्यपरक कविताओं में बेहद साफगोई है तो 'अस्पर्श बचाता है पवित्रता' लिखते हुए 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' जैसी कविताओं में बाजारवाद के नग्न-जाल से सचेत भी करते हैं। वे समाज की पीड़ा देखकर अत्यंत दुखी हैं तो राजनैतिक चक्रव्यूह में अपने आपको बार-बार असहाय पाते हैं इसलिए ऐसी व्यवस्था के प्रति उनमें क्षोभ है, जिस पर गहरा व्यंग्य भी करते हैं।

जरूरी नहीं कि रचनाकार को तत्काल समाज में नाम मिल जाये लेकिन यदि रचना सारगर्भित है, जीवंत है, समसामयिक है और समाज को नयी दिशा दिखाने में सक्षम है तो वह भीड़ से अलग होकर देर-सबेर 'नाम नहीं' को भी नाम दे जाती है। राठी जी की यह यादगार कविता समाज की कड़वी सच्चाई को हमेशा व्यक्त करती रहेगी –

'आदमी जब हो गये आंकड़े
बन्द हो गयी उनकी चीख
चीखने लगे लेकिन आंकड़े
बरसने लगे टप टप
आँसू

■

सजप राष्ट्रीय कार्यकारिणी की दिल्ली बैठक

पिछले रांची सम्मेलन के बाद पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक 12-13 अक्टूबर 2019 को नई दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में हुई। महात्मा गांधी, आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण और डॉ. राममनोहर लोहिया के स्मरण दिवसों से जुड़े अक्टूबर महीने में राष्ट्रीय कार्यकारिणी बैठक की शुरुआत 12 तारीख की सुबह 11 बजे से इन प्रेरणास्रोत नेताओं के स्मरण से हुई।

बैठक में अध्यक्ष लिंगराज आजाद, महामंत्री अफलातून समेत कार्यकारिणी के सदस्य और राज्यों के अध्यक्ष तथा महामंत्री शामिल थे। इनमें गंगा प्रसाद, डॉ. रंजीत कुमार महली, विनोद पाय्यडा, राधाकांत बोहिदार, डॉ. महेश विक्रम, मकसूद अली, जग नारायण महतो, अतुल कुमार, राम केवल चौहान, उपेन्द्र बाघ, राज किशोर सुनानी, डॉ. चंद्र भूषण चौधरी, उपेंद्र शंकर, डॉ. संतोष कुमार, फागराम, जोशी जैकब, अशोक रायवीर, रणजीत कुमार राय, निशा शिवूरकर, नरेंद्र कुमार, चौधरी राजेंद्र, राम विनोद प्रसाद, डा. संतूभाई संत, भारत भूषण चौधरी, हरिमोहन मिश्र और डॉ. स्वाति। बैठक में विद्यार्थी युवजन सभा के संयोजक शैलेश कुमार भी शामिल रहे। इसके अतिरिक्त आमंत्रित सदस्यों में शिवाजी राव गायकवाड़, संघमित्रा गाडेकर, सदाराम मांडले, स्मिता, सुनीता, मदनलाल हिंद, प्रेमनाथ भार्गव, भुवनेश्वर राय, नीता चौबे, शिउली वनजा, इकबाल अभिमन्यू और भूपेश उपस्थित रहे।

पहले सत्र में राज्यों की ओर से संगठन की स्थिति पर रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया। इसके बाद संगठनात्मक मुद्दों पर विस्तीार से चर्चा हुई जिसमें सदस्यों ने संगठन की कमजोरियों, इसे दूर करने के उपायों और अगले तीन महीने की कार्ययोजना के साथ ही प्रशिक्षण शिविरों के आयोजन की जरूरत पर बल दिया। संगठन से संबंधित कई नए मुद्दों को उठाया गया और इन पर पार्टी की ओर से रुख निश्चित करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। संगठन के घोषणा पत्र 'समाजवादी नजरिया' की समीक्षा और इसमें नए मुद्दों को शामिल करने की जरूरत भी महसूस की गई।

अगले सत्र में प्रो महेश विक्रम, भारत भूषण चौधरी और अतुल कुमार की समिति की ओर से महेश विक्रम ने राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर समेकित प्रस्ताव पेश किया। इस पर चर्चा और संशोधनों के बाद इसे पारित किया गया।

सांगठनिक प्रस्ताव निशा शिवूरकर, रणजीत कुमार राय और जोशी जैकब की समिति ने प्रस्तुत किया गया। इसे भी बैठक में पारित किया गया।

बैठक में असम में लागू राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) पर विस्तार से चर्चा हुई। आसन्न विधानसभा चुनावों पर चर्चा हुई और तय हुआ कि इन चुनावों में संगठन प्रत्याशी नहीं उतारेगा बल्कि विपक्षी दलों का समर्थन करेगा।

राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक प्रस्ताव

दोबारा बड़े बहुमत से केंद्र में सत्ता में आने के साथ भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने बड़े एजेंडे को देश पर लागू करने में लग गए हैं। अमित शाह के गृह मंत्री बनते ही इसके स्पष्ट संकेत मिल गये थे। हम सब जानते हैं कि इस सरकार के दो ही मंसूबे और कार्यक्रम हैं। एक, अल्पसंख्यकों, खास तौर से मुसलमानों को लक्ष्य करके हिंदुओं को उनके विरुद्ध लामबंद करना और अपने लिए बहुमत बनाए रखना। दूसरे, आर्थिक नीति के तौर पर अपने चुनिंदा पूंजीपतियों के हाथ राष्ट्र की संपदा सौंप कर अपने सामाजिक दायित्वों से मुक्त होना और स्वयं अपने और अपने दल के लिए अकूत पैसे की ताकत जुटाना।

लेकिन अपने पिछले कार्यकाल में उठाए गए गलत आर्थिक कार्यक्रमों और छालावों से जब देश के आर्थिक हालात काबू से बाहर हो गए तो अचानक सेना के बल पर कश्मीरियों को बंधक बनाकर अनुच्छेद 370 और 35ए के तहत उसके विशेष दर्जे के प्रावधानों को खत्म कर दिया गया। इससे सरकार ने देश की बड़ी जनसंख्या को एक बार फिर भावनात्मक रूप से उग्र राष्ट्रवाद के भुलावे में फंसा कर बड़ी चुनौतियों से उसका ध्यान भटकाने का काम किया। पूंजीवादी व्यवस्था के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेकाबू होने के साथ ही उसके पूंजीवादी समाधानों से भी बात बनती न देखकर अभी यह सरकार एनआरसी, राम मंदिर निर्माण और आगे शायद जल्दी ही संविधान के बदलाव जैसे कार्यक्रमों में उलझा कर राष्ट्र को भयानक संकट में डालने में जुटी है।

यहां इस सरकार द्वारा जनता को एक के बाद एक दिए जा रहे धोखों, सार्वजानिक क्षेत्र के उपक्रमों और उद्यमों को अपने चहेते पूंजीपतियों के हाथों बेचने, चुनावी षड्यंत्रों, चुनाव में एकतरफा पूंजी के खेल, सभी लोकतांत्रिक संस्थाओं और सरकारी मशीनरी, यहां तक कि न्यायपालिका तक को अपने काबू में लेने जैसी सभी बातों की सिलसिलेवार विस्तार से चर्चा जरूरी नहीं है, क्योंकि हम इस पर लगातार बात करते रहे हैं। कश्मीर के प्रश्न पर हैबियस कार्पस जैसे मामले में सर्वोच्च न्यायालय के टालमटोल के रुख से यह और भी साफ हो गया। लोकतंत्र और संविधान पर ही गहराता संकट और उसके अस्तित्व

को चुनौती तात्कालिक रूप से सबसे ज्यादा गंभीर विषय है। यूएपीए कानून के नए प्रावधानों ने वस्तुत: सरकार के गलत कदमों के विरुद्ध आवाज उठाने या उसकी आलोचना करने जैसे मौलिक अधिकार को भी छीन लिया है। आम लोगों में सरकार के तिलिस्म के प्रति नासमझी बन गई है, तो इसे समझने वालों में भय व्याप्त हो गया है। सरकार की आलोचना मात्र को देशद्रोह मान लिया गया है।

यह भी बार-बार साबित हो चुका है कि विपक्ष के किसी भी बड़े-छोटे राजनैतिक दल के पास देश को इस गंभीर संकट से निकालने की न कोई दृष्टि है, न ही नेतृत्व, संगठन या कार्यक्रम। ऐसे में देश के नवनिर्माण के लिए सही राजनैतिक विकल्प देने के विचार और आग्रह से स्थापित सजप को और भी सजगता और समर्पण से सामने आने की जरूरत है।

इस संबंध में यह ध्यान में रखना जरूरी है कि सत्ताधारी दल ने अपनी शक्ति हमारे जनतंत्र में ही सांप्रदायिक और जातिवादी कूटरचना से हासिल की है। अल्पसंख्यकों के विरुद्ध हिंदुओं को लामबंद करने में हिंदुओं की बड़ी उदार परंपरा और हमारे देश की साझा संस्कृति की सूफी परंपरा को भी हाशिए पर रखने और दूसरी ओर मध्यकालीन सामंतवादी कट्टर प्रवृत्तियों को बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। इसी के साथ भाजपा ने आरक्षित जातियों के ही पारंपरिक हितों के टकराव का लाभ लेकर चुनावी सफलता अर्जित की है जबकि आरक्षण के माध्यम से राजनैतिक महत्व प्राप्त करने वाली जातियां इस बात से बेखबर हैं कि वर्तमान पूंजीवादी आर्थिक और प्रशासनिक नीति सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार को ही समाप्त करती जा रही है। सरकारी स्कूल, उद्यमों का निजीकरण या पीपीपी के नाम पर निजी हाथों में हस्तांतरण के साथ सरकार अपनी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ रही है और छोटी-मोटी रियायतों (विभिन्न योजनाओं के नाम पर नकद हस्तांतरण) से किसानों को भ्रमित रखने में लगी है। जल, जंगल, जमीन, खदान सब कुछ कंपनियों के हवाले होते जा रहे हैं। दूसरी ओर स्वउद्यम और कारीगरी के सहारे जीवन-यापन करने वाले लोगों का जीवन कंपनियों से निर्मित उत्पादों और बाजार ने दूभर कर दिया है। विश्व बैंक और विश्व व्यापर संगठन के तहत हुए समझौतों से पहले ही देसी उत्पादों और किसानों को काफी नुकसान पहुंच चुका है। नवंबर 2019 में जापान, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया सहित दस आसियान देशों के बीच क्षेत्रीय व्यापार साझेदारी करार के खिलाफ उठी आवाजों से घबराकर सरकार ने भले उससे फिलहाल हाथ खींच लिए हैं लेकिन इन मुक्त व्यापार समझौतों से किसानों और आदिवासियों की उपज की हालत लगातार खाराब होती जा रही है। सजप ऐसे करारों की तीव्र निंदा करती है।

पूंजीवादी समाधानों से भी बात बनती न देखकर अभी यह सरकार एनआरसी, राम मंदिर निर्माण और आगे शायद जल्दी ही संविधान के बदलाव जैसे कार्यक्रमों में उलझा कर राष्ट्र को भयानक संकट में डालने में जुटी है।

कुल मिलाकर नतीजे सामने हैं। देश की अर्थव्यवस्था चरमरा चुकी है। सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की विकास दर और 50 खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने का झांसा देने वाली सरकार असली आकड़ों को छिपाने या झुठलाने में लगी है। सच तो यह है कि वर्तमान में हमारे देश की विकास दर पाकिस्तान और बांग्लादेश से भी निचले स्तर पर है। गैर-सरकारी अर्थशास्त्री इस समय ऋणात्मक विकास दर की भयावह स्थिति का आंकड़ा दे चुके हैं।

सजप का कहना है कि व्यक्ति की आय की अधिकतम सीमा तय कर उसके ऊपर की आय पर 70 प्रतिशत या ऐसा ही कुछ प्रतिशत आयकर के रूप में लिया जाना चाहिए। इसी प्रकार संपत्ति पर उताधिकार या विरासत कर को पुन: लागू किया जाना चाहिए। वहीं दूसरी ओर अप्रत्यक्ष करों में कटौती के साथ आम आदमी की आय में बढ़ोतरी के जरिए ही अर्थव्यवस्था में सुधार संभव है।

देश की दंड व्यवस्था और न्यायिक प्रणाली नितांत दोषपूर्ण बनी हुई है। निरपराध लोगों और खासकर आदिवासियों को बिना उचित जांच प्रक्रिया के पुलिस के हाथों सौंप देने या जेल में बरसों-बरस के लिए ठूस देने की औपनिवेशिक पद्धति आज भी धड़ल्ले से लागू है। मतदान के समय मतदाता से पहचान पत्र की मांग का भी सजप विरोध करती है।

पिछली कांग्रेस सरकार द्वारा शुरू किए गए सामाजिक, आर्थिक और जातिगत जनसंख्या (2011) के आकड़ों को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। दूसरी तरफ अनेक राज्यों में एनआरसी के नाम पर सरकारें आम जनता को धमकाने में लगी हैं। असम में एनआरसी सूची से बाहर के लोगों के लिए नजरबंदी शिविर के निर्माण को सजप सिरे से नकारती है और ऐसे लोगों को अपने घरों में ही रहने देने की मांग करती है। सजप का मानना है कि पड़ोसी देशों के बीच स्वतंत्र आवागमन की सुविधा के साथ भारतीय उपमहाद्वीप के महासंघ के डॉ. लोहिया के सपने से देश और इस क्षेत्र के बीच सौहार्द और मित्रता स्थापित की जा सकती है। ■

जम्मू-कश्मीर पर प्रस्ताव

पिछले 5 अगस्त को केंद्र की भाजपा नीत एनडीए सरकार ने जम्मू-कश्मीर से संविधान के विशेष प्रावधान अनुच्छेद-370 की कई धाराओं को निष्प्रभावी बना दिया। इस तरह जम्मू-कश्मीर के विशेष राज्य के दर्जे के साथ पूर्ण राज्य का दर्जा भी समाप्त कर दिया गया और उसे दो केंद्र शासित प्रदेशों में बांट दिया।

केंद्र ने संसद से तीन प्रस्ताव पारित कराए। एक, संविधान संशोधन कर कश्मीरी संविधान सभा के न रहने की स्थिति में उसका अधिकार राष्ट्रपति में निहित कर दिया गया है। असल में 2018 में भी सुप्रीम कोर्ट ने एक फैसले में दोहराया था कि अनुच्छेद 370 को हटाने का अधिकार कश्मीर की संविधान सभा को है और 1957 में संविधान सभा के भंग हो जाने के बाद यह 'अस्थायी' प्रावधान अब 'स्थायी' हो गया है क्योंकि दूसरी बार संविधान सभा का गठन कर ही इस पर विचार किया जा सकता है। इस फैसले को पलटने के लिए सरकार ने संविधान में ही संशोधन कर दिया है।

सरकार ने न केवल राज्य का दर्जा खत्म कर दिया है बल्कि उसे दो केंद्र शासित प्रदेशों जम्मू-कश्मीर और लद्दाख में बांट दिया। भाजपा सरकार ने यह सब राज्य की जनता को विश्वास में लिए बिना किया है, जिसका वादा जम्मू-कश्मीर के विलय के वक्त किया गया था। इस निहायत अलोकतांत्रिक, छलपूर्ण और असंवैधानिक कार्रवाई के करीब हफ्ते भर पहले से ही पूरी घाटी में संचार सेवा बंद कर दी गई। मुख्यधारा की पार्टियों और हुर्रियत के नेताओं को हिरासत में ले लिया गया। सिर्फ राजनैतिक ही नहीं, व्यापार जगत के प्रमुख लोगों, सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ-साथ बड़ी संख्या में युवाओं को गिरफ्तार कर लिया गया। घाटी की करीब 90 लाख की आबादी पर तकरीबन 9 लाख सुरक्षाबलों को तैनात कर दिया है। स्कूल-कॉलेज बंद कर दिए गए। शुरू में घोषित और बाद में अघोषित कर्फ्यू लगा दिया गया। दो महीने बाद भी हालात जस के तस बने हुए हैं।

संसद तक में भ्रामक तथ्यों और बयानों के जरिए देश को गुमराह किया गया। गिरफ्तारियों के बारे में तो गलत तथ्य पेश किए गए। गृह मंत्री ने यहां तक कहा कि फारूक अब्दुल्ला गिरफ्तार या नजरबंद नहीं हैं। लेकिन सुप्रीम कोर्ट में जब तमिलनाडु के नेता वायको की अर्जी पर सुनवाई शुरू हुई तो उन्हें सार्वजनिक सुरक्षा कानून के तहत गिरफ्तार कर लिया गया। ऐतिहासिक तथ्यों को भी गलत ढंग से पेश किया गया। इंतहा तो तब हो गई जब गृह मंत्री ने यह तक कह दिया कि भीमराव आंबेडकर और राममनोहर लोहिया अनुच्छेद 370 के खिलाफ थे। यह सरासर गलतबयानी है। हम इस अभद्रतापूर्ण बयान की निंदा करते हैं। डॉ. लोहिया भारत-पाकिस्तान महासंघ बनाने के हिमायती रहे हैं, ताकि सीमाओं को आवागमन के लिए खुला छोड़ा जा सके।

सजप मानती है कि केंद्र की भाजपा-एनडीए सरकार ने अपने एकत्ववादी, सांप्रदायिक हिन्दुत्ववादी एजेंडे लागू करने के लिए ऐसा किया है। सजप मानती है कि जम्मू-कश्मीर में पूरे देश की तरह ही जन भावना को कुचलने का काम केंद्र की सरकारें करती रही है। चाहे कांग्रेस सरकार की 1953 का कश्मीर संविधान को नजरअंदाज कर भारी बहुमत से चुने गए जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला को अपदस्थ करना और अगले बीस साल के लिए जेल में डालना रहा हो, बाद के दिनों में धांधली कर चुनाव जीतना रहा हो या भाजपा की अब की कार्रवाई हो, सरकारें राज्य में सांप्रदायिक सौहार्द से छेड़छाड़ कर ही कार्रवाई करती रही हैं। कहना न होगा कि भाजपा सरकार की कार्रवाई पर कांग्रेस के कुछ नेताओं का भी मौन समर्थन मिला।

सजप मानती है कि केंद्र की सरकारों की तरह ही राज्य की पार्टियों नेशनल कॉन्फ्रेंस या पीडीपी की सरकारों की भी इस समस्या के समाधान की कोई इच्छाशक्ति नहीं रही है। देश के बाकी दलों की तरह ही उनका व्यवहार भी गैर जिम्मेदाराना रहा है। इस स्थिति में देश भर में सांप्रदायिक उन्माद और वैमनस्य पैदा कर भाजपा-आरएसएस घटिया लाभ लेने की फिराक में है। सजप केंद्र सरकार की इस धोखेबाजी, असंवैधानिक, गैर जिम्मेदाराना और धूर्तता से भरी इस प्रवृत्ति की कड़ी निंदा करती है।

जम्मू-कश्मीर या किसी राज्य की स्वायतत्ता और संघीय ढांचे पर बात करते समय सजप का यह भी मानना है कि प्राकृतिक संसाधनों पर मूल वासियों और 'लम्बे समय के वासियों' का व्यक्तिगत और सामुदायिक अपरिवर्तनीय अधिकार है। सजप मानती रही है कि सरकार द्वारा प्रायोजित सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भी ज़मीन, जंगल, खनिज और जल का अधिग्रहण वहां की स्थानीय लोकतांत्रिक सरकारों (ग्राम सभा, पंचायत, ज़िला परिषद वगैरह) की सहमति से ही हो सकती है।

जिस तौर-तरीके को कश्मीर में अपनाया गया, उससे यह अंदेशा होता है कि वर्तमान कार्रवाई को केंद्र एक लिटमस टेस्ट के तौर पर ले सकता है और इसमें सफल होने के बाद वह आदिवासी इलाके, अन्य राज्यों के विशेषाधिकार और यहां तक कि विरोधी दल शासित राज्य सरकारों को कुचलने के लिए वहां भी ऐसी कार्रवाई कर सकता हैं और वहां के संवैधानिक अधिकारों को समाप्त कर सकता है और तानाशाही कायम की जा सकती है। भंग या निलंबित विधानसभा के अधिकार राज्यपाल के माध्यम से राष्ट्रपति को दे देना अलोकतांत्रिक, असंवैधानिक है। कश्मीर की संविधान सभा, विधानसभा की शक्ति राज्यपाल, राष्ट्रपति में निहित मान लेना तानाशाही का द्योतक है।

इंदौर में दो दिवसीय समाजवादी समागम

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की 117वीं जयंती 11 अक्टूबर 2019 और राममनोहर लोहिया की पुण्यतिथि 12 अक्टूबर को मध्य प्रदेश की औद्योगिक राजधानी इंदौर में दो दिवसीय समाजवादी समागम का सफल आयोजन हुआ। समागम में बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि राज्यों के डेढ़ सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भागीदारी करते हुए समाजवादी आंदोलन की वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाओं पर गहन मंथन किया। दो दिन चले इस समागम में कई प्रस्ताव पास किए गए वहीं प्रशिक्षण शिविर, कई समागम, समाजवादी विचार न्यूज पोर्टल और फीचर एजेंसी शुरू करने के निर्णय लिए गए। समागम का उद्घाटन वरिष्ठ समाजवादी चिंतक डॉ. आनंद कुमार ने किया जबकि समापन नर्मदा बचाओ आंदोलन तथा एनएपीएम की नेता मेधा पाटकर ने किया।

प्रतिनिधियों ने करीब 4 किलोमीटर लंबा जुलूस निकाला और गांधी प्रतिमा पहुंचकर गांधी, लोहिया व जयप्रकाश को श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर एक 36 पृष्ठों की स्मारिका विचार प्रवाह भी प्रकाशित की गई। उद्घाटन भाषण में आनंद कुमार ने आज की चुनौतियों का जिक्र किया, जिसमें पहला आरएसएस मॉडल (सांप्रदायिक हिंसा, मस्जिद गिराना, हिन्दू राष्ट्र लाना) है। यह विचार उदार हिंदुओं को धर्म पर हमला होने जैसा प्रतीत होता है, जिसका हल बताते हुए उन्होंने कहा, सिद्धांत, संगठन, कार्यक्रम, आंदोलन को नई चमक की आवश्यकता है। अत: गैर-भाजपाई दलों का सुधार और उन्हें जनांदोलन से जोड़ना है। आनंद कुमार ने पांच नीतियों का भी जिक्र किया, जिसमें कौमी एकता नीति, शिक्षा रोजगार नीति, जल नीति, ऊर्जा नीति, नर-नारी समता नीति सम्मिलित है। कार्यक्रम का संचालन पूर्व विधायक व समाजवादी समागम के संयोजक डॉ. सुनीलम ने किया।

पीपुल्स फोरम का 7वां त्रिदेशीय सम्मेलन

बांग्लादेश-भारत-पाकिस्तान पीपुल्स फोरम का सातवां त्रिदेशीय सम्मेलन कोलकाता में संपन्न हुआ। सम्मेलन में 120 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वीजा न मिलने के कारण पाकिस्तान के प्रतिनिधि सम्मेलन में शामिल नहीं हो सके, लेकिन फोन पर उन्होंने अपना संदेश प्रतिनिधियों को दिया।

अध्यक्ष देवब्रत विस्वास के प्रस्ताव पर बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान की जनशताब्दी वर्ष को धूमधाम से मनाने का फैसला किया गया। इसकी शुरुआत 18 फरवरी 2020 को नेताजी के कोलकता में एल्गिन रोड स्थित निवास से होगी, यात्रा बंगबंधु के निवास धानमंडी (ढाका) तक जाएगी।

सम्मेलन में जम्मू-कश्मीर के पूर्व सांसद शेख अब्दुल रहमान ने जम्मू-कश्मीर को लेकर प्रस्ताव पेश किया, जिसका समर्थन डॉ. सुनीलम ने किया। सम्मेलन में जस्टिस फॉर कश्मीर अभियान चलाने का निर्णय लिया गया। 5 अगस्त को अनुच्छेद 370 और 35ए हटाने का जल्दबाजी में निर्णय लिया गया। जम्मू-कश्मीर की जनता से बिना सलाह-मशवरे के राज्य का दर्जा समाप्त कर दो केंद्र शासित क्षेत्रों में बांटने का असंवैधानिक एवं तानाशाहीपूर्ण फैसला लिया गया था। 13 नवंबर को, इस फैसले के 100 दिन पूरा होने के अवसर पर कश्मीर एकजुटता दिवस मनाने का निर्णय लिया गया।

पश्चिम बंगाल के पूर्व विधायक हरिपद विस्वास द्वारा नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटीजंस (एनआरसी) के विरोध में प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसका समर्थन त्रिपुरा के सुभाष रॉय ने किया। निर्णय लिया गया कि बीबीबीपीएफ का एक प्रतिनिधिमंडल जाकर निर्माणाधीन डिटेंशन कैंप का दौरा करेगा तथा बीबीपीपीएफ द्वारा रिजेक्ट एनआरसी अभियान चलाया जाएगा। सम्मेलन ने स्पष्ट किया कि बीबीपीपीएफ हर स्तर पर धर्म के आधार पर नागरिकता तय करने वाले नागरिकता कानून का विरोध करेगा।

खुदाई खिदमतदार साइकिल यात्रा

राजघाट नई दिल्ली से चलकर 'लिंचिंग व हिंसा मुक्त भारत साइकिल यात्रा' 14 नवम्बर को हैदरी बिल्डिंग (गांधी भवन) कोलकाता में समाप्त हुई। प्रेम, सद्भावना, भाईचारा का संदेश लेकर दिल्ली से हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड के गांव, शहर, स्कूल, कॉलेज, चौपाल, चौराहे, गलियों में जनसंपर्क, बैठकें, चर्चा, मित्रता करते हुए कोलकाता पहुंचे।

यात्रा की शुरुआत में सामाजिक कार्यकर्ता व सोशलिस्ट पार्टी के उपाध्यक्ष संदीप पांडेय, खुदाई खिदमतगार के संयोजक फैसल खान, सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव श्याम गंभीर, मंजू मोहन, वरिष्ठ पत्रकार कुर्बान अली, खुदाई खिदमतगार के नरगिस बहन, जावेद आलम, डॉ. कुश, रिजवान खान, समाजसेवी दीपक ढोलकिया, सोशलिस्ट युवजन सभा के महासचिव वंदना पांडेय इत्यादि उपस्थित थे।

महाभारत में 'अहिंसा परमो धर्म' की शिक्षा दी गई है, अर्थात अहिंसा ही परम धर्म हैं। महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर ने अपने अनुयायियों को अहिंसा का पाठ पढ़ाया। पश्चिम में ईसा मसीह ने सारे संसार को अहिंसा की शिक्षा दी। महात्मा गांधी कहते हैं कि विश्व के समस्त जीवों से प्रेम करो। धरती पर निम्नतम कोटि का प्राणी भी ईश्वर का प्रतिरूप है, इसलिए वह तुम्हारे प्रेम का अधिकारी है। आज मानव प्रेम, अहिंसा के सिपाही फैसल खान के नेतृत्व में गांधी के उस संदेश को लेकर निकले हैं जिसमें गांधी कहते हैं 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं' यदि कोई पापी तुम्हारे संपर्क में आता हैं तो अपने चरित्र-बल से उसे भी पाप से विमुख करके सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करो। गांधी जी आगे कहते हैं कि 'जो मनुष्य अपने साथ जीवन बिताने वाले मनुष्यों से प्यार करता हैं, वही ईश्वर से प्यार करता हैं।' लेकिन आज लोग ईश्वर के प्रति तो प्रेम दिखाते हैं लेकिन उन्हें मनुष्य से प्रेम नहीं हैं। यानी वे सिर्फ ईश्वर प्रेम का दिखावा करते हैं या ईश्वर के नाम पर राजनीति।

R.N.I. पंजीयन संख्या 31211/77

ये सत्ता के अजब फकीर!

योगराज सिंह

कहने को वो फकीर हैं और झोला उठाकर चल देने की धमकी भी बार-बार देते हैं। संविधान दिवस पर संवैधानिक मर्यादा और पारदर्शिता, नैतिकता पर लंबे-चौड़े भाषण भी देने में कोई बाधा नहीं पैदा होती। लेकिन आधी रात को मर्यादाओं की धज्जी उड़ाते भी देर नहीं लगती। यकीनन कुछ साल बाद कोई अध्येता भी इस भ्रम में पड़ जाएगा कि किस बात को सही माना जाए। दावे तो यह भी हैं कि घर-परिवार छोड़कर देश की सेवा को निकल पड़े हैं। किसी से कोई लेना-देना नहीं है। मामला किसी एक का नहीं है, बल्कि अदने-से विधायक, सांसद, मंत्री तक यह कहने से नहीं चूकते कि देश के लिए अपना सबकुछ छोड़ दिया है।

देश के मौजूदा मुखिया का तो दावा है कि चाय भी बेची है और स्टेशनों के प्लेटफार्मों पर खुले में स्नान भी किया है। उनकी यह चाय चुनावी मुनाफे भी भरपूर दे गई और कूटनीति में भी काम आ गई। लेकिन चाय कब बेची, कहां बेची, इसके बारे में पुख्ता जानकारी तो शायद भगवान के दरबार में ही कैद होगी। लेकिन देश की जनता को कैसे बरगलाया जा सकता है, इसका भरपूर इंतजाम होता है। कभी पुलवामा, बालाकोट के बहाने चुनाव जीत जाते हैं तो कभी अनुच्छेद 370 और राम मंदिर मुद्दे को भुनाने की जुगत में लगे रहते हैं।

खैर, चुनावों में जीत तो सभी पार्टियां चाहती हैं, लेकिन भाजपा जिस तरीके को अपनाकर जीतना चाहती है, उसे भी जायज ठहराने वालों की कमी नहीं है। झूठ बोलकर सत्ता की चाबी हाथ में ले लेना, यह आज कुछ ज्यादा ही चलन में है।

इसी कड़ी में अगर आप देखेंगे तो कई राज्य के मुख्यमंत्रियों द्वारा बोला जाने वाला झूठ बढ़ा-चढ़ाकर परोसा जा रहा है। आरएसएस के प्रचारकों द्वारा यह प्रचारित किया जाता रहा है कि भारतीय जनता पार्टी में परिवार को बढ़ावा नहीं दिया जाता है। लेकिन भाजपा में जरा नई पीढ़ी के नेताओं पर नजर डाल लीजिए ज्यादातर अपने राजनैतिक पिताओं के वारिस हैं। भाजपा के मौजूदा मुखिया तो तथाकथित सादा जीवन के लिए ही जाने जाते हैं, उन्हें कोई लालच नहीं है, परिवार में कोई नहीं है। लेकिन अभी हाल में एक घटना हुई, इसमें प्रधानमंत्री की भतीजी का पर्स झपटमार छीन ले जाते हैं, अक्टूबर महीने के दूसरे सप्ताह में यह घटना काफी चर्चित रही। दिल्ली पुलिस ऐसी मुस्तैदी से झपटमार को पकड़ लाई जो किसी आम आदमी के लिए तो अपवाद में ही दिखती होगी। अगर प्रधानमंत्री घर-परिवार को नहीं मानते तो यह एक साधारण घटना की तरह आई-गई बात होती। लेकिन प्रधानमंत्री के मुंह से लच्छेदार भाषण तो सिर्फ सुनने में ही अच्छे लगते हैं, अंदर की सच्चाई कुछ और होती है। आरएसएस के अधिकांश प्रचारक हो, या भाजपा के नेता, सबके सब सुख पाने के लिए तीन-पांच करते दिखते हैं।

बड़े से लेकर छोटे तक सबके सब यह कहते फिरते हैं कि राष्ट्र निर्माण के लिए अपने सुख और अपने परिवार तक को त्याग दिया है। हमारी मंशा चुनाव जीतकर जनता के भले के लिए काम करना है। लेकिन चुनाव की असली लड़ाई तो सुख पाने की है। दो महीने की मेहनत और पांच वर्ष की मौज। कौन नहीं छोड़ देगा परिवार, अगर इंडिया गेट और राष्ट्रपति भवन के चारों ओर फैले बंगलों में रहने को मिले। यहां से बड़ा सुख और कहां मिलेगा? क्या परिवार में रहते हुए ऐसा सुख मिल सकता है? सत्ता सुख की लड़ाई है, ऐसा कहने की बजाय ट्रैक बदलकर जनता के भले की बात करते हैं।

भाजपा ही क्यों, आम आदमी पार्टी के मुखिया अरविंद केजरीवाल भी तो यही कहकर आए थे कि कोई सरकारी सुख-सुविधा नहीं लेंगे। लेकिन कुछ दिनों के अंदर सभी ने वह सारी सुविधाएं ले ली, जो उन्हें मिलने वाली थी।

दरअसल देश क्या पूरी दुनिया का दस्तूर लगभग एक ही जैसा है। बहुत कम ही लोग हैं जो अपने कहे पर कायम रहते हैं। सत्ता सुख की लड़ाई है, इसे अब सब समझते हैं। झूठ, बोलना, बड़े-बड़े कसीदे पढ़ना, बरगलाना, एक-दूसरे से झगड़ना, गालिया देना यह सब चलन में है। दरअसल झूठ बोलना तो नेताओं का काम ही है। लेकिन जो झूठ अभी के माहौल में बोला जाने लगा है, वह अपाच्य है। देश में कई राज्यों के मुख्यमंत्री अविवाहित हैं और परिवार से कोई लेना-देना नहीं है। देशहित और जनता की भलाई में लगे हैं। तो, लगे रहो भैया, ऐसा सुख अन्यत्र कहां मिलने वाला है।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार प्रसाद सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091 से प्रकाशित और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : अफलातून